श्री चन्द्रप्रभ

# बनना है तो बनो अरिहंत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

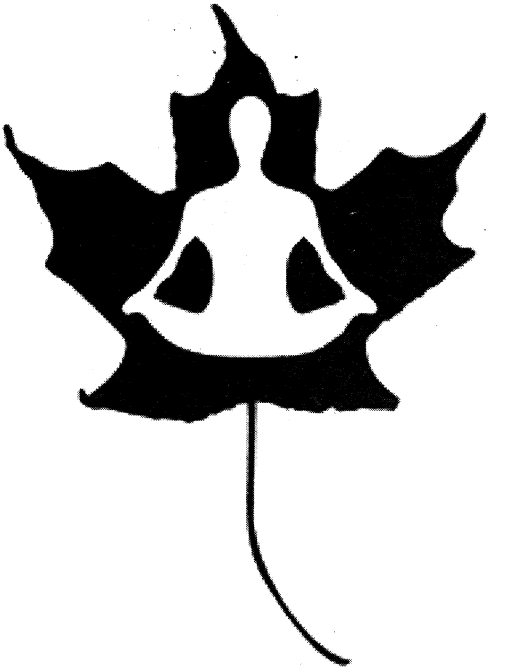

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौजन्य-संविभाग

श्री कैलाश-प्रमिला पटवा
अंकित-कोमल, भाविका पटवा
जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्द्रप्रभ

# बनना है तो बनो अरिहंत

आत्म-विजय का रास्ता दिखाने वाली
प्रकाश-किरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनना है तो बनो अरिहंत
श्री चन्द्रप्रभ

संपादक
श्रीमती लता भंडारी 'मीरा'

प्रकाशन वर्ष : अक्टुबर, 2012

प्रकाशक : श्री जितयशा फाउंडेशन
बी-7 अनुकम्पा द्वितीय, एम.आई.रोड, जयपुर (राज.)
आशीष : गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म.
मुद्रक : भारत प्रेस, जोधपुर
मूल्य : 30/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# प्रस्तुति

भगवान महावीर ने हजारों वर्ष पूर्व जो सन्देश दिए थे वे आज भी उपयोगी हैं। उनके कहे हुए सूत्र ब्रह्मवाक्य हैं। आज हालात अवश्य बदल गए हैं, पर सूत्रों की सार्थकता यथावत् है। आप प्रतिदिन इन सन्देशों का स्मरण कर जीवन-चर्या प्रारम्भ कीजिए, दैनन्दिनी में एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। धीरे-धीरे जीवन-शैली ही बदल जाएगी। आप विस्मित होंगे कि यह परिवर्तन!

महान जीवन द्रष्टा पूज्य श्री चन्द्रप्रभ ने महावीर-वाणी के सागर से कुछ सूत्र रूप मुक्ताओं का चयन कर जन-मानस को उसकी आभा से परिचित कराया है। हम उन सूत्रों को तर्कबुद्धि से नहीं, हृदय-भाव से परखें, तभी वे हमारे अन्तस् में उतर सकेंगे। प्रस्तुत सूत्रों में जब आप अवगाहन करें तो मात्र ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं; एक मुमुक्षा, जिज्ञासा से जब आप इनमें उतरेंगे तो अस्तित्व का नया अनुभव पाएँगे और यह अनुभव जीवन की आधारशिला बनेगा। क्योंकि जब अनुभव होगा तभी श्रद्धा भी फलीभूत होगी। ऐसी श्रद्धा जो न अंधविश्वास हो, न अंधानुकरण।

सत्य के अनुसंधान में अपरिसीम साहस चाहिए- यह साहस एकत्रित किया है पतित-पावन गुरु श्री चन्द्रप्रभ ने। अर्थहीन धारणाओं को खण्डित करते हुए और श्री भगवान द्वारा स्थापित ध्यान-पथ पर चलते हुए वे ऐसे मुकाम पर पहुँच चुके हैं, जहाँ प्रकाश की किरणें स्वतः स्फूर्त हैं। आपकी जिज्ञासा का समाधान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न पूछने से नहीं, मात्र आपके मन में उठने से उनकी वाणी द्वारा हो जाता है।

पूज्यश्री की वाणी अमृत संचय है। इसे हृदय से रसपान करें और हृदय की अतल गहराइयों में बहने दें। यह प्रभु की ओर से करुणामयी पुकार है और प्रेमपूर्ण आमंत्रण भी। जीवन के रहस्यों को जानने का, सत्य का अवगुंठन हटाने का परम अवसर प्रभु ने प्रदान किया है। इस सुअवसर को, जीवन के रूपान्तरण की कला को चूक न जाएँ। एक दीर्घ प्रतीक्षा के बाद यह ग्रन्थ आपको समर्पित है। पूज्यश्री की वाणी को आत्मसात् कर जीवन-पथ और साधना-पथ दोनों को सफल बनाएँ।

संसार से समाधि तक की मुक्ति-यात्रा में यह पुस्तक आपके लिए अति उपयोगी सिद्ध होगी। यह पुस्तक किसी दीपशिखा की तरह है, जिसके प्रकाश में आप आगे क़दम बढ़ा सकेंगे मुक्ति के दिव्य लोक की ओर। इसका एक-एक सूत्र हृदयंगम हो सके, इसी अभिलाषा के साथ.....

प्रभुश्री के चरणों में विनीत अहोभाव!

**- मीरा**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# अंदर क्या है...

| | | |
|---|---|---|
| 1. अन्तर्यात्रा के लिए आमन्त्रण | ... | 9-18 |
| 2. आत्म-विजय की ओर चार क़दम | ... | 19-28 |
| 3. लोभ पर लगाएँ लगाम | ... | 29-38 |
| 4. समय का करें सार्थक उपयोग | ... | 39-48 |
| 5. जीवन का करें काया-कल्प | ... | 49-57 |
| 6. समझें, धर्म का रहस्य | ... | 58-66 |
| 7. भीतर जगाएँ बोध की बाती | ... | 67-77 |
| 8. फिर से कोई आत्मा जागे | ... | 78-88 |
| 9. सफल हो हमारी रातें | ... | 89-98 |
| 10. मेरा पथ है मुक्त गगन | ... | 99-107 |
| 11. फिर मुक्ति के पंख खुले | ... | 108-119 |


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

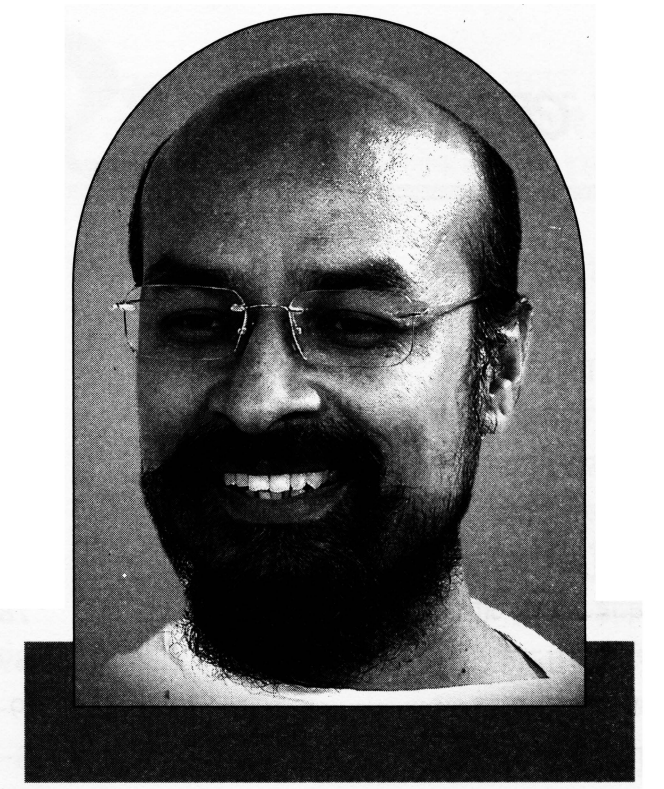

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# अन्तर्यात्रा के लिए आमन्त्रण

प्रत्येक व्यक्ति परमात्म-चेतना का मालिक है। परमात्मा के प्रति हमारा दृष्टिकोण लोकतांत्रिक होना चाहिए। परमात्मा पर किसी का एकाधिकार नहीं है। हर व्यक्ति परमात्मा होने की क्षमता रखता है। 'अप्पा सो परमप्पा'– जो आत्मा वही परमात्मा। हर व्यक्ति परमात्मा है। अपने स्वभाव से स्खलित हो जाने के कारण ही व्यक्ति परमात्मा से अलग हुआ है। स्वभाव में स्थिरता, स्वभाव में स्थिति ही परमात्मा होना है।

परमात्मा अस्तित्व का पर्याय है। वह सदा ही उपस्थित है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव में भी उसकी ज्योति है। किसी से पूछो, भगवान है? वह कहेगा– मुझे ज्ञात नहीं है। क्यों? इसलिए कि उसे देख सकें, ऐसी आँख नहीं है। सम्यक् दृष्टि उपलब्ध हो जाये, तो जीवन का हर रहस्य स्पष्ट हो जाये। अंधा सूरज को खोजना चाहे, तो उसकी यह तलाश ही व्यर्थ है। सूरज कहीं खोया नहीं है, आँख चाहिये। आँखों में, चेतना में परिवर्तन चाहिये। हमारी आन्तरिक गहराई में, हमारी विशुद्ध अध्यात्म-चेतना में परमात्मा की सुवास आस्वाद देगी। इसलिए खोजना है तो आँखें खोजो। प्रयास वे हों, जिनमें आँख खुल जाये, चेतना की आँख, बोध की आँख। 'अप्पा सो परमप्पा'– आत्मा वही, जो परमात्मा हो जाए।

मनुष्य की आत्मा की तीन अवस्थाएँ हैं– बहिर्आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जब मनुष्य अपनी वासना/ कामना/ इच्छा के बहाव में बहकर परवस्तु पर



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षित और मोहित हो जाता है, तब वह बहिर्गमन करता है। वह बहिरात्मा हो जाता है। यह कार्य वह शरीर द्वारा संपादित करता है। जिसकी यात्रा बाहर की ओर प्रारम्भ हुई है, जिसकी आत्म-चेतना की ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित रहती है, वे आत्माएँ मूलत: परमात्म-स्वभाव की होते हुए भी बहिर्आत्माएँ हैं।

जब बहिर्आत्मा अपनी बाह्य-दृष्टि को अन्तर्मुखी करती है, तब वह अन्तरात्मा में परिणत होती है। आत्माएँ तीन होती हैं। बहिर्आत्मा का अर्थ ही है कि व्यक्ति ने अपनी निजता का मूल्य खो दिया और किसी पर-वस्तु या विषय को अधिक मूल्य दे दिया। जब तुम पर-पदार्थ को अधिक मूल्य देते हो, तो वह तुम पर हावी हो जाता है। अन्तरात्मा होने का यही अर्थ है कि दूसरे का मूल्य इतना ही हो जितना कि होना चाहिए। हमसे अधिक अन्य किसी का मूल्य नहीं हो सकता। यहाँ कुछ भी निर्मूल्य नहीं है। लेकिन क्या स्वयं से अधिक मूल्यवान कुछ भी है? घर में आग लग जाए तो सबसे पहले तुम स्वयं को बचाओगे। अपना जीवन ही सर्वाधिक मूल्यवान है। स्वयं के जीवन के समक्ष दुनिया भर की सारी संपदा निर्मूल्य है।

किसी भी पर-वस्तु को स्वयं पर हावी मत होने दो। दूसरों के लिए हमारे मन में सहानुभूति हो, समानुभूति हो, लेकिन उन्हें अपना स्वामी मत बनने दो। कोई अन्य तुम्हारा मालिक बने, इससे पहले तुम स्वयं अपने स्वामी हो जाओ। अन्य कोई किसी व्रत, बंधन या प्रताड़ना से हमें अपने वश में करे, उसके पूर्व ही हम आत्मानुशासन को थाम लें, आत्म-नियंत्रण कर लें।

अन्तरात्मा अर्थात् भीतर की ओर मुड़ना। आँखों के भीतर आँखें खोलकर अन्तर्-जगत् को देखना ही अन्तर्-आत्मा है। जब तक व्यक्ति अन्तर्जगत् में नहीं उतरता, तब तक उसके लिए मूल्य और निर्मूल्य का भेद रहता है, लेकिन भीतर के जगत् में प्रवेश पाते ही, उसका स्वाद पाते ही, आन्तरिक प्रकाश की उज्ज्वलता मिलते ही, वहाँ की सुवास उपलब्ध होते ही, वह अनन्त सुख से भर जाता है। भीतर का प्रेम, आनन्द, मौन और तृप्ति अनूठी है। उसकी सांसारिक वस्तुओं से तुलना नहीं की जा सकती।

जब तक भीतर न उतरे, गहन अंधकार ही दिखाई देता है। बाहर से मनुष्य भले ही कहता रहे कि वह शान्ति में है लेकिन जब तक भीतर अशान्ति जमी हुई है, तब तक बाहर की शान्ति आरोपित है। केवल दो मिनट के लिए आँखें बन्द करो और मन को एकाग्र करने का प्रयास करो। दो मिनट तो हो भी न पाएँगे, उससे पहले ही भीतर-ही-भीतर बातें चलनी शुरू हो जाएँगी। अन्तर्-वार्ता का यातायात इतना तीव्र हो जाएगा कि तुम घबरा जाओगे और आँखें खोल ही दोगे। यह अनर्गल प्रलाप, यह तीव्र शोरगुल अन्य किसी का नहीं, हमारा अपना है। कब तक इस शोरगुल से बचे



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहोगे? कब तक तृष्णा को सुख और पारिवारिक शोर को शान्ति मानते रहोगे? वैसे भी इस प्रेम, सुख और शान्ति को कौन बरकरार रख सका है? प्रतिदिन वही-वही क्रियाएँ दोहराते रहते हो लेकिन कभी शान्ति पा सके?

तुम इतने भरे हुए हो कि दस मिनट भी अकेले और शान्त नहीं रह सकते। दस मिनट में ही अत्यधिक बेचैन और उग्र हो जाओगे। कुछ न कुछ करने को व्याकुल हो उठोगे। अगर तुम्हें तीन दिन तक अकेला छोड़ दिया जाए तो तुम स्वयं से ही बातें करने लगोगे और सात दिन तक किसी खाली कमरे में अकेला रख दिया जाए, तो पागल हो जाओगे, पागलों जैसी हरकतें करनी शुरू कर दोगे। जन्म लिया तब अकेले थे, मृत्यु भी अकेले को ही ले जाएगी, लेकिन हमने अपने चित्त को, अपनी चेतना को भीड़ से इतना संबद्ध कर लिया है कि बिना भीड़ के सब नीरस ही लगता है। उसके बिना जीवन प्रतीत ही नहीं होता।

हम क्रोध से भी जुड़ गए हैं। कुछ दिन क्रोध न करें, तो ऐसा लगता है कि कुछ हुआ ही नहीं, खाली-खाली सा लगता है। वासना ने इतना जकड़ लिया है कि बिना पत्नी के रह ही नहीं सकते। एक का इन्तकाल हो जाए तो दूसरी ले आते हैं, दूसरी चली जाए तो तीसरी....। खाली व्यक्ति अपने को भरने का प्रयास कर रहा है। शान्ति, मौन, आनन्द से नहीं भर पाता। आन्तरिक खुशियों से नहीं भर पाता, तो भरता है अपने को परिवार से, बच्चों से, धन-दौलत से, ज़मीन-ज़ायदाद से। लेकिन बाहर से कभी कोई भर पाया है? बाहर से जरूर भरा-पूरा दिखाई देगा, लेकिन आन्तरिक दरिद्रता यथावत् विद्यमान रहती है। बाहर से तो भीतर कुछ जा नहीं पाता, हाँ! तुम जरूर भीतर से बाहर आ जाते हो। यह चेतना जो भीतर से बाहर बह रही है, यही बहिर्आत्मा है।

तुम स्वयं को धर्मात्मा समझ सकते हो, क्योंकि तुम रोज मंदिर जाते हो, पूजा-अर्चना, सामायिक-प्रतिक्रमण करते हो, लेकिन कभी यह भी देखा कि तुम कितनी भावहीनता के साथ हर क्रिया को सम्पन्न कर रहे हो? जैसे दुकान-दफ्तर जाने का काम करते हो उसी ढंग से मंदिर, पूजा-अर्चना भी निपटा देते हो। कहीं कोई उमंग, कोई आह्लाद आविर्भूत होता है?

मनुष्य बाहर से भीतर की ओर मुड़े, भीतर की ओर देखे, भीतर का स्वाद चखे, भीतर की सुवास का आनन्द उठाए, तो वह जानेगा कि जहाँ वह है वहीं लीला हो रही है। आख़िर जीवन सिर्फ़ आजीविका कमाने के लिए तो नहीं है? जब तक जीवन की उपयोगिता के बारे में सोचते रहोगे, जीवन का कोई उपयोग नहीं कर पाओगे, क्योंकि तब वह दस मिनट भी खाली न रह सकेगा। उसमें भी सोचेगा कि क्या करूँ, कैसे समय गुजारूँ। कुछ-न-कुछ करना शुरू कर दोगे। रेडियो सुनने लग जाओगे,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

टी.वी. देखोगे और कुछ नहीं तो सफाई के नाम पर घर के सामान की उठा-पटक करोगे या कागज फाड़ोगे, नावें बनाओगे यानी कुछ-न-कुछ करते रहोगे। कभी तो स्वयं में, मौन में, अकेले अपनी शान्ति में जीने का प्रयास करो। देखो! अकेले में कैसे जीया जाता है। कुछ फुरसत में रहना सीखें। प्राय: कोई काम न करते हुए भी हम मानसिक रूप से कहीं-न-कहीं व्यस्त रहते हैं। इस मानसिक व्यस्तता से बचें। संगीत का आनन्द लें। व्यर्थ कामों का बोझ न लादें। अपने सामर्थ्य के अनुसार जितना समय सार्थक कार्यों में खर्च करें, उतना ही तनाव कम होगा। एकाकीपन में भी जीना आना चाहिए। भीड़ में तो सभी जी लेते हैं, लेकिन वह प्रणम्य है जो भीड़ के बीच भी अकेला रहता है।

राम वनवासी होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, तो ठीक है, लेकिन ध्यान दो उस भरत की ओर, जो महलों में रहकर भी राम से अधिक वनवासी का जीवन जी रहा है। हो सकता है गुफा में रहकर भी तुम संसार खड़ा कर लो। यह अलग बात है कि वहाँ लोग न पहुँचेंगे, पर तुम्हारे विचार तो तुमसे अलग नहीं हैं। वे विचार तो वासना से भरे हैं, वहाँ भी पीछा करेंगे। वे विचार तुम्हारे इर्द-गिर्द लेश्या-मंडल के रूप में घूमते रहेंगे।

मेरे देखे तो व्यक्ति घर में रहकर भी संन्यस्त जीवन व्यतीत कर सकता है। दो व्यक्ति मेरे आदर्श हैं, एक हैं राजर्षि प्रसन्नचन्द्र, जिनके लिए भगवान कहते हैं कि अभी इनकी मृत्यु हो जाए तो सातवीं नर्क में जाएँगे और दूसरे ही क्षण कहते हैं कि अब इनकी मृत्यु निर्वाण है। मात्र दो मिनट के अन्तराल में एक व्यक्ति के स्वर्ग और नरक के निर्माण होते हैं। दूसरे आदर्श हैं स्थूलिभद्र, जो कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करके भी स्वयं को बेदाग और निर्लिप्त रख पाए।

हमारा ब्रह्मचर्य तो एक लबादा है। एक महिला पुरुष को स्पर्श नहीं करेगी। वह बचेगी कि कहीं स्पर्श हो गया और विचलित हो गई तो? वह स्वयं ही भयभीत है, विचलित है। ब्रह्मचर्य को तो हमने ओढ़ रखा है। अरे! कहीं छूने भर से कुछ खण्डित होता है? तुम इतने कमजोर हो? लेकिन हम डर रहे हैं। इसीलिए जब भीतर की सुवास फूट आए तो ये बाहरी आवरण फीके हो जाते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य की झलक मिल जाने पर बाहर का सौन्दर्य रसहीन हो जाता है।

बौद्धों में हीनयान और महायान दो परम्पराएँ रही हैं। महायान धर्म तो आज भी विद्यमान है, लेकिन आज से हजार वर्ष पूर्व हीनयान पर जोर रहता था। हीनयान के आचार्य-पद पर किसे प्रतिष्ठित किया जाए इसकी परीक्षा होती। चौबीस घंटे तक किसी नग्न स्त्री को उस संघ के आचार्य-पद के उम्मीदवार के साथ रखा जाता, उसके साथ रहकर जो संत निर्लिप्त रह पाता, उसे ही संघ का आचार्य बनने का



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकार प्राप्त होता। परहेज रखकर तो कोई भी स्वयं को बचा लेगा, लेकिन काजल की कोठरी से बेदाग निकल आना सबके लिए संभव नहीं। सामने भोजन रखा हो और उस पर नज़र भी न उठे तो जानना कि त्याग हुआ है, अन्यथा जीवन भर छोड़ना होता जाएगा और छूटेगा कुछ भी नहीं। जैन के संस्कार हैं तो आलू-प्याज छोड़ दोगे, लेकिन खाने के प्रति आसक्ति नहीं छूटेगी। उपवास तो करोगे पर पहले गरिष्ठ भोजन करोगे। फिर उपवास पूरा हो, उससे पहले ही खाने की रूपरेखा बनाना भी शुरू कर दोगे। तुम तीन दिन के उपवास करते हो। उसके पहले उत्तर पारणा करते हो। अच्छा शब्द है- उत्तर पारणा। उपवास के पूर्व भी खाना, और बढ़िया-से-बढ़िया भोजन करना क्योंकि कल से उपवास है तीन दिन का। तीन दिन का उपवास पूर्ण होगा कल और आज रात से ही प्रबंध शुरू हो जाएँगे कि कल पारणे में क्या-क्या लेना है। इससे तो अच्छा है कि भूखे न रहो। भोजन ही कर लो । यूँ तो तुम सादा भोजन करते हो, पर उपवास के नाम पर....!

उपवास भूखे रहने के लिए नहीं है। उपवास तो भोजन के प्रति रहने वाली आसक्ति को मिटाने के लिए है। जब तक आसक्ति बरकरार रहती है, तुम्हारे उपवास हुए ही कहाँ। छोड़ने से कुछ भी नहीं छूट रहा, मन में तो इच्छा हो जाती है कि खा लो। कोई देखने वाला भी नहीं है, लेकिन फिर विचार आता है, ग्रंथों में लिखा है, गुरु महाराज ने भी इतना कहा है, तो अब छोड़ ही दो। तब मजबूर होकर, किसी भावना से उत्प्रेरित होकर हम छोड़ देते हैं।

लोग संन्यास लेते हैं, मुनि बन जाते हैं, पर वास्तव में कितने मुनित्व को उपलब्ध हो पाते हैं, यह अन्वेषण का विषय है। साधुओं को तो अपनी जमात बढ़ानी है, क्योंकि वे देखते हैं कि अकेले तो गाँव वाले गाँव में घुसने न देंगे। गाँव वाले सोचेंगे - होगा कोई ऐसा-वैसा। हाँ! यदि चार साधु साथ हैं तो जरूर कुछ पहुँचा हुआ होगा। अब इनसे पूछो कि अध्यात्म का भीड़ से क्या लेना-देना? जब तुम खुद ही कहीं नहीं पहुँच सके, तो दूसरे को क्या पहुँचा पाओगे? जब तक यह विश्वास न हो जाए कि तुम स्वयं अध्यात्म को उपलब्ध हुए हो, तब तक दूसरे के जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं करनी चाहिए। स्वयं को यह अनुभव होने पर कि हाँ, मैंने पाया है और मेरे सम्पर्क में कोई बुझा हुआ दीप आता है, तो मैं अनिवार्यत: उसे ज्योतिर्मय कर दूँगा, ऐसा सामर्थ्य, ऐसी दिव्यता, ऐसी ज्योतिर्मयता, ऐसी गुरुता मुझमें है, तभी अपनी ओर से किसी दीये को आने का आमंत्रण दें, आह्वान करें, अन्यथा किसी की श्रद्धा और समर्पण का तो अमानवीय दोहन होगा।

लोगों के जीवन में ईमानदारी नहीं है। संन्यास हो या संसार, ईमानदारी नहीं है। जब भीतर ईमानदारी जाग्रत होगी, तब तुम रोओगे, प्रायश्चित करोगे कि किस-किस



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के साथ तुमने इतना अन्याय किया है। कैसी अराजकताएँ फैलाई हैं। जीवन एक महान उपलब्धि है। जीवन को परमात्मा का प्रसाद, आशीर्वाद बनाकर जीओ। इसे अन्य किसी के साथ प्रवंचना और धोखे में मत लगाओ। बहिर्गमन बहुत हो गया। हमारी अन्तरात्मा हमें पुकारती है। हमारे भीतर का परमात्मा हमें बुलाता है। अध्यात्म और परमात्मा पर किसी व्यक्ति-विशेष का अधिकार नहीं है। यह पूरी लोकतांत्रिक अवधारणा है। हर एक के भीतर परमात्मा की सत्ता और संभावना विराजमान है। आज नहीं तो कल, प्रत्येक को परमात्मा होना ही है। वह दिन पृथ्वी का स्वर्णिम दिन होगा, जब यहाँ रहने वाला हर प्राणी परमात्मा के रूप में विकसित होगा। वह दिन मनुष्य के भाग्य का परम-दिवस होगा, जब हर बीज स्वयं में बरगद होगा, हर पंछी में मुक्ति की उड़ान होगी, हर आत्मा में परमात्मा की सुवास, प्रकाश और स्वाद होगा।

भगवान के सूत्र उन लोगों के लिए सार्थक हैं, जो जीवन के प्रति ईमानदार हैं। स्वयं के प्रति ईमानदार, सत्य प्रामाणिक, निर्भीक और मृदुल हुए बिना कोई भी अपने जीवन में अपूर्वकरण गुण-स्थान को उपलब्ध नहीं कर सकता। सिर्फ़ परम्परा और रूढ़ि-रीति निभाने से कुछ नहीं मिलेगा। एक मात्र प्रामाणिकता और ईमानदारी ही हमारे जीवन को ऊँचा उठा सकती है।

हमने अपने पुरुषार्थ को कुछ रेशम के धागे बुनने में लगा दिया। आप जानते हैं, लोहे की जंजीरों को तोड़ना बहुत सरल होता है, लेकिन रेशम की जंजीरों को, रेशम के बंधनों को तोड़ना बहुत कठिन होता है। एक दुश्मन से अलग हुआ जा सकता है लेकिन परिवार, माता-पिता, पुत्र-पत्नी के रेशमी धागों से मुक्त होना अत्यन्त दुष्कर है। भगवान कहते हैं कि जिसने जीते-जी स्वयं को राग और आसक्ति से मुक्त कर लिया, वीतरागता में विश्वास हो गया, वह व्यक्ति मृत्यु के द्वार पर पहुँचकर भी मृत्यु से विचलित नहीं होता, अपितु निर्वाण की निर्धूम ज्योति जाग्रत कर लेता है। जो ऐसा नहीं कर पाते, उन्हीं के लिए सूत्र है-

तओ कम्म गुरू जन्तू पच्चुपन्न परायणे।
आ गया एसे अयव्व मरणं तम्मि सोयई।

सूत्र कहता है-

भोगो में रत और कर्मों से भारी बना हुआ जीव मृत्यु के समय वैसे ही शोक करता है, जैसे मेहमान के आने पर मेमना।

इसे समझें।

कहते हैं किसी व्यक्ति ने एक मेमने को पाला। उसे बहुत ही स्निग्ध और



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुस्वादु भोजन मिलता था। वहीं एक गाय और बछड़ा भी रहता था। बछड़े की माँ के प्रति हमेशा शिकायत रहती कि यह अपना मालिक भी कैसा है, जो मेमने को इतना बढ़िया भोजन खिलाता है, जबकि यह तो कुछ काम भी नहीं करता। खूब मोटा हो रहा है, एक कोने में पड़ा रहता है, हिलाओ तो हिले भी नहीं, फिर भी हमारा मालिक इसकी कितनी देखभाल करता है। और तुम्हें देखो माँ, तुम इन्हें दूध देती हो, फिर भी ये तुम्हें सूखी घास और सूखा चारा डालते हैं। यह तो अन्याय है माँ। जो कुछ नहीं देता, उसकी इतनी सेवा और जो अपने आँचल का अमृत दे रही है उसे सूखा चारा!

माँ ने कहा– बेटे, आज तुम्हें भले ही शिकायत हो रही हो, लेकिन जिसकी मृत्यु निकट आ जाती है उसे ही इतना सुस्वादु भोजन मिलता है। तू रो मत, परेशान भी न हो, किसी प्रकार की चिन्ता भी न कर, क्योंकि तुझे कोई खतरा नहीं है। माँ बेटे को यह बात रोज समझाती लेकिन बात बछड़े के गले ही न उतरती। एक दिन बछड़े ने देखा कि मालिक के घर मेहमान आए हैं। बहुत करीब के संबंधी थे। उसने देखा कि मालिक हाथ में छुरा लेकर बाड़े की ओर आ रहा है। वह मेमने के पास पहुँचा, उसे जमीन पर गिराया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

बछड़ा काँप उठा। गाय के शरीर से लिपट गया, पूछने लगा– यह क्या हो गया माँ! इसे तो मार दिया गया, क्या मुझे भी ऐसे ही मार दिया जाएगा। माँ ने कहा– जो आत्म-संयम से जीते हैं, उन्हें कोई खतरा नहीं है। मृत्यु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। घर आए मेहमान भी उसे विकृत-विचलित नहीं कर सकते। तुम्हें कुछ नहीं होगा, तुम आराम से रहो। तब बछड़े को समझ में आया कि जो व्यक्ति सुस्वादु भोजन के लिए दिन-रात मरता है, भोगों में रत रहता है, वह कर्मों से भारी बना हुआ जीव, मृत्यु के आने पर ठीक ऐसे ही शोक करता है जैसे मेहमान के आने पर मेमना शोक करता है।

मेमनों को अतिथियों के स्वागत में काट दिया जाता है। जो मनचाहे गुलछर्रे उड़ाते हैं, एक दिन उन्हीं के गले काटे जाते हैं। सुस्वादु भोगों की आसक्ति हमारे जीवन के सार-सर्वस्व का संहार कर डालती है। आसक्ति ही कारण बनती है मृत्यु का, पश्चाताप का। आत्म-संयम सदा सुखावह है। सम्यक्-सात्विक भोजन, पवित्र-शान्त मन सदा सुखावह रहता है। कहीं ऐसा न हो कि जीभ का स्वाद और रूप की मोहकता में हम अपनी कोई बड़ी हानि कर बैठें।

भगवान कहते हैं, 'भोगों में रत और कर्मों से भारी बना हुआ जीव....।' मनुष्य तो चौबीसों घण्टे भोगों में रत रहता है। भोग का अर्थ केवल विषय-वासना से न लें, भोजन भी भोग है, वाणी भी भोग है, मिलना भी भोग है और सोना भी भोग है। भोग तो भोग है। हर भोग पूर्ण भोग है। व्यक्ति बात भी करेगा, तो अत्यन्त रसपूर्वक– यह



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी भोग है। दिन-रात यही चलता है। मितभाषिता तो मनुष्य के पास है ही नहीं। तुम सोचो, तो पाओगे कि जो बातें कल की थीं वही आज कर रहे हैं। जो आज की हैं वही परसों भी कर रहे थे। बातों का कोई अन्त नहीं है; बातें सिर्फ़ पुनरावृत्ति हैं।

किसी से मिलते हो, तो तुरन्त पूछते हो- कैसे हो, तबियत तो ठीक है न्? जब तबियत खराब थी तब तो घर पर न गए पूछने के लिए, वहाँ जाकर कुछ सेवा न की और अब बातें बना रहे हो।

एक गंजे मित्र को देखकर दूसरे ने पूछा- भाई, गंजे कैसे हो गए?

उसने बताया- जीभ के कारण गंजा हो गया।

यह तो बड़े ताज्जुब की बात है। मैंने तो आज तक ऐसा नहीं सुना कि जीभ के कारण व्यक्ति के सिर के बाल उड़ते हों- पहले ने कहा।

गंजे ने कहा- बात यह है कि जीभ चलती रही और सिर पर जूते पड़ते रहे।

अपनी भाषा पर, वाणी पर संयम तो होना ही चाहिए। मनुष्य भोगों में रत है; सोचता है सुख मिलता है। पर क्या सुख मिलता है? जितनी बार सुख पाया उतना ही प्रायश्चित भी किया कि आज अनर्थ हो गया कि बहुत जलन हुई, कि आज बहुत तकलीफ हुई और आने वाले कल में इस गलती को पुनः नहीं दोहराऊँगा। लेकिन आज आते ही कल की बात भूल जाते हो और फिर वही करने लगते हो। खुजलाने से भला कभी खुजली का रोग ठीक हुआ है? वह तो बढ़ेगा ही। सब क्षणिक उत्तेजनाएँ हैं। यह उत्तेजना शरीर की ऊर्जा के क्षीण हो जाने से शिथिल हो जाती है और व्यक्ति सोचता है- मैंने सुख-शान्ति पाई। नहीं! तुमने न सुख पाया, न शान्ति पाई, उत्तेजना का तो तापमान ऊपर चढ़ा था वह नीचे आ गया; न सुख मिला, न शान्ति, सिर्फ उत्तेजना बह गई।

सूत्र कहता है- ऐसा व्यक्ति मृत्यु आने पर शोक करेगा, लेकिन मैं तो जीवन का यथार्थ जान रहा हूँ कि व्यक्ति जीवन-भर ही शोक करता है। बार-बार मिलकर बातें करके या गले लगकर सिर्फ अपने शोक को भुलाया करता है। शोक, पीड़ा, दुख तो विद्यमान रहते हैं, वह उन्हें केवल भुलाता है।

भारतीय मनीषा तो कहती है कि व्यक्ति दाम्पत्य-जीवन का उपयोग सिर्फ संतानोत्पत्ति के लिए करे ताकि वृद्धावस्था में वह संतान माता-पिता का सहारा बन सके, लेकिन ऐसा नहीं होता। सुकरात ने तो कहा कि वह व्यक्ति धन्य है जो जीवन में कभी दाम्पत्य का सेवन नहीं करता, पर यह भी संभव नहीं। तब कहा गया कि वर्ष में एक बार विषय सेवन किया जाए। तदुपरान्त मास में एक बार की छूट दी गई कि वह माफ किया जा सकता है। उसे पशुता से कुछ ऊपर रखा जाएगा, पशु के स्तर से



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ श्रेष्ठ ही रहेगा, लेकिन जिसके जीवन में न नियमन है, न शोधन; न माह का पता, न दिन का भान; जब उत्तेजना जगी भोग लिया। सुकरात कहते हैं– मैं नहीं जानता उसे क्या कहा जाए? पशुओं में तो एक ऋतु होती है। मनुष्य की कौन-सी ऋतु होती है? तभी तो मैं कहता हूँ कि मनुष्य पूरा मनुष्य ही बन जाए, इतना पर्याप्त है।

यदि मनुष्य मनुष्य का जन्म लेकर भी पशुता से ही गुजरता रहे, तो यह तो अधःपतन है। ऐसी स्थिति में सूत्र कहता है कि मृत्यु आने पर शोक होगा, पर मैं तो देखता हूँ मनुष्य शोकमग्न रहता है, पीड़ा में जीता है, पीड़ा को बनाए रखता है, पीड़ा को ढकता रहता है। मैं पूछना चाहता हूँ– कब तक बाह्य आवरणों से भीतर के रोगों को ढाँकते रहोगे? जीवन को इस पार ले जाओ या उस पार। अध-बीच में क्या जीना? कुनमुने रहकर क्या जीना? आदमी सागर का पानी चख भी रहा है और खारा है इसलिए छोड़ना भी चाहता है। यही बहिर्आत्मा की पहचान है कि व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्व में जीता है। पर पदार्थ की आसक्ति में जीना ही बहिर्आत्मा है। स्वयं में जीना अन्तरात्मा में जीना है। वह परमात्मा है जो बाहर और भीतर के द्वैत से ऊपर उठ चुका है।

परमात्मा पर किसी व्यक्ति-विशेष का अधिकार नहीं है, हर व्यक्ति परमात्मा है। अपने स्वभाव में आ जाओ, परमात्मा हो गए। अपने स्वभाव से जितने, जैसे, जब दूर हटोगे, परमात्म-पद से, परमात्म-स्वभाव से, परमात्म-आनन्द से विचलित होते जाओगे। स्वयं पर हमारा नियंत्रण होना ही चाहिए। जैसे भोजन तो अवश्य करो, क्योंकि यह शरीर की आवश्यकता है लेकिन कब भोजन करना, कैसे और कितना भोजन करना, यह विवेक तो हमारे भीतर होना ही चाहिए। दिन-रात तो भोजन नहीं कर सकते। अंग्रेजी में शब्द है: 'ब्रेक-फास्ट'। 'फास्ट' का अर्थ है उपवास और 'ब्रेक' का अर्थ है रुकावट; यानी उपवास में रुकावट। रात-भर के उपवास के बाद भोजन करना यानी ब्रेक-फास्ट।

सुबह तुम देर से उठे, अपने-आप सूर्योदय के बाद खाने का नियम सध गया, पर अपनी ओर से कोई जागरूकता नहीं है। तुम्हें तो चाय भी बेड पर चाहिए। कुछ तो समझ रखो, तनिक जागरूकता से देखो– पक्षी क्या करता है? उसे भी तो प्यास लगती है पर संयम से सारी रात बिता देता है। कहीं कोई बेचैनी नहीं, सर्प भी तभी फुँफकारता है जब उसे छेड़ा या सताया जाता है, लेकिन हम जरा-जरा सी बातों पर क्रोध से फुँफकारते रहते हैं। जरा सोचो किसका स्तर ऊँचा और कौन गिरा हुआ? जीवन का धर्मशास्त्र आँखों के सामने लिखा है। भले ही आपने धर्मग्रंथों का स्वाध्याय न किया हो लेकिन धर्म तो जगत् के मध्य ही लिखा है। हमारी जागरूकता



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कितनी है सब उस पर निर्भर है। ठोकर खाकर संभल गए तो ठीक है, अन्यथा बार-बार ठोकरें खाते रहोगे और गर्त में गिरते रहोगे। बुद्ध और संबुद्ध तो वही है, जो ठोकर लगने से पहले ही जाग्रत हो जाता है, बुद्धत्व की यही पहचान है। ठोकर किसी और को लगती है, जागता कोई और है, गिरता कोई और है, संभलता कोई और है। तुम गिरकर संभले तो क्या हुआ? दूसरे को गिरता देखकर संभलना ही प्रज्ञाशीलता है, जागरूकता है।

मैं चाहूँगा कि आप किंचित भीतर झांकें, अपनी आत्मा में उतरें। भीतर का परमात्मा हमें पुकार रहा है। भले ही आज मन डोल रहा है, उसमें कूड़ा-कर्कट भी हो सकता है लेकिन हम इसे हटा सकते हैं, मन को स्थिर और निर्मल कर सकते हैं। दुनिया को सुधारने का दावा करने वाले को भी, स्वयं का सुधार तो खुद ही करना पड़ता है। ईमानदारी से भीतर झाँकें, देखें क्या स्थिति है। अपने से पलायन मत करो, अपने से मित्रता बनाओ। अपने साथ जीने और स्वयं को समझने का प्रयास करो। भीतर की विक्षिप्तता स्वयं ही समाप्त हो जाएगी।

तब हमारे भीतर एक अनूठी शांति का आविर्भाव होगा। एक अलग ही आनन्द, एक अलग ही सौन्दर्य, एक अलग ही अनोखा रस छलक उठेगा। इस रसपान के लिए आपको आमंत्रण है। निमग्न हो जाइए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# आत्म-विजय की ओर चार क़दम

साधना का मार्ग आत्म-विजय का मार्ग है। विजय के दो पहलू हैं- आत्म-विजय और विश्व-विजय। युद्ध चाहे आत्म-विजय के लिए हो या विश्व-विजय के लिए, दोनों के लिए ही व्यक्ति का योद्धा रूप चाहिए। बाहर की लड़ाई अपने अंतिम निष्कर्ष में विजय-ध्वज फहराती है और भीतर की लड़ाई अपने उपसंहार में अध्यात्म के उत्कर्ष का आनंद देती है। बाह्य विजय तो अन्ततः पराजय में बदलनी ही है पर एक विजय है, जिसमें सबसे परास्त होकर भी व्यक्ति विजेता बन जाना है। एक विजय वह विजय है, जिसमें खून-खराबा, हिंसा करके धरती के नाम पर मिट्टी बटोरता है लेकिन अन्ततः उसी धरती में समा जाता है। विश्व-विजय की कामना से ग्रस्त सिकंदर को अपनी कब्र पर लिखवाना पड़ा था - यहाँ वह विश्व-विजेता सोया हुआ है जो अंतिम समय में अपनी छोटी-सी इच्छा भी पूरी न कर सका। जिसने जीवन भर इकट्ठा किया, लेकिन अंत में खाली हाथ जाना पड़ा। दूसरी विजय वह है जिसमें जीवन महोत्सव बन जाता है। इसमें मृत्यु पर शोक नहीं किया जाता, निर्वाण के रूप में दीपावली मनाई जाती है।

बाहरी विजय अहंकार की विजय है, जिसे अन्ततः पराजय में तब्दील होना ही है। आत्म-विजय वहीं से प्रारम्भ होती है, जहाँ अहंकार नष्ट होता है। बाह्य-विजय प्राप्त करके भी क्या पा लोगे अगर स्वयं को न जीत पाए। औरों को देखकर भी क्या देखा अगर स्वयं अनदेखे रह गए। बहुतों को सुनकर भी क्या सुना अगर स्वयं



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनसुने रह गए।

महावीर का मार्ग योद्धा का मार्ग है और संघर्ष उनका सूत्र है। संकल्प उनके मार्ग की नींव है। सहिष्णुता उनके मार्ग का संबल और पाथेय है। जो लोग जिनत्व की यात्रा करना चाहते हैं, उनके लिए महावीर मानस-मित्र, कल्याण-मित्र और साधना के मार्ग पर नींव के पत्थर हैं, मील के पत्थर हैं। वे परम-यथार्थ और परम-आदर्श भी हैं। महावीर और राम में इतना-सा ही फ़र्क़ है कि राम धरती के दानवों का संहार करते हैं और महावीर अपने भीतर के दानवों का संहार करते हैं। कृष्ण कंस और जरासंध की मृत्यु के लिए अवतार लेते हैं। शिशुपाल के सौ गुनाहों को क्षमा कर अन्ततः उसकी गर्दन पर सुदर्शन-चक्र चलाते हैं और महावीर बाहर के एक-एक परिषह और दुश्मनों को हँसते-हँसते सहन करते हुए भीतर के शत्रुओं को समाप्त करने के लिए अपने आपसे संघर्ष करते हैं। सिकंदर की जीत विश्व पर जीत है, महावीर की जीत स्वयं की जीत है।

विश्व-विजेता कब तक याद रखे जा सकते हैं! बहुत जल्दी भुला दिए जाते हैं। आत्म-विजेता कभी भुलाये नहीं जाते। सम्राट तो जमींदोज हो जाते हैं, पर आत्म-शत्रुओं पर विजय पाने वाले बुद्ध और तीर्थंकर पुरुषों का परचम शाश्वत फहराता रहता है। विश्व-विजेता का अर्थ है दुनिया को गुलाम बनाना और आत्म-विजेता वह जिसने अपने द्वार-दरवाजों को सारी दुनिया के लिए खोल दिया। प्रेम, करुणा, अहिंसा और दया का द्वार प्राणिमात्र के लिए खोल दिया। विश्व-विजेता तक पहुँचना मुश्किल है लेकिन आत्म-विजेता तक पहुँचना सरल है। इसीलिए धरती पर संत पूजे जाते हैं और सम्राट भुला दिए जाते हैं।

एक सम्राट भी जब किसी संत के पास से गुजरता है, तो उसका अहंकार और दर्प भी संत की आभा से विगलित हो जाता है। वह सोचता है - इसके पास कुछ भी नहीं है, फिर भी कितनी शांति है, कितनी तृप्ति है और मेरे पास सब-कुछ होते हुए भी न दिन में चैन का भोजन न रात में आराम की नींद। उस प्राप्ति को कैसे उपलब्धि कहें, जो तुम्हारी दिन की रोटी और रात की नींद ही हरण कर ले। उस खोने को खोना कैसे कहें, जहाँ परमात्मा जीवन की सारी व्यवस्थाओं को जुटाता है। प्रकृति की प्रबंध-समिति बहुत व्यवस्थित है, उसका मातृत्व सब पर बरसता है। प्रकृति से स्वयं को हटाकर अपनी चिंता के लिए जीवन को जितना झोंकोगे, प्रकृति के लाभों से, उसके वात्सल्य से उतना ही वंचित रह जाओगे।

सिकंदर यूनान से भारत पर विजय पाने के लिए रवाना हुआ, तब उसके गुरु डायोज़नीज़ ने कहा, 'तुम भारत से चाहे जितनी सम्पत्ति और गुलाम ले आना लेकिन वापसी में वहाँ से एक संत भी साथ में लाना।' सिकंदर हँसा। उसका हँसना



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वाभाविक था क्योंकि वह सोचता था, संत तो निःशुल्क मिलते हैं, उन्हें तो जब चाहो तब लाया जा सकता है। एक पंडित को लाना कठिन है, लेकिन संत को लाना बहुत ही आसान है।

भारत-विजय के बाद जब सिकंदर लौटने लगा, तो उसे डायोज़नीज़ की बात याद आ गई। उसने संत को ढूँढ़ने का आदेश दिया। सिपाहियों ने गाँव वालों से पूछा। पता लगा उस गाँव के बाहर एक संत है। उसने सिपाहियों को भेजा। सिपाहियों ने जाकर संत से कहा, 'तुम्हें हमारे साथ यूनान चलना होगा।'

संत ने पूछा, 'क्यों? मुझे तो यूनान से कोई काम नहीं।'

सिपाही ने कहा, 'यह सम्राट सिकन्दर का आदेश है। तुम्हें चलना ही होगा।'

संत ने कहा, 'सम्राट! सम्राट सिकन्दर।'

सिपाही ने कहा, 'हाँ! सिकन्दर विश्व-विजेता है। विश्व का सम्राट है। तुम्हें उसका आदेश मानना ही होगा।

संत हँसे, उन्होंने कहा, 'सम्राट्! सिकन्दर सम्राट नहीं है। जो स्वयं का ही स्वामी नहीं, वह विश्व का स्वामी कैसे हो सकता है?'

अपने सैनिकों से अपनी तौहीन की बात सुनकर सिकन्दर क्रोध से आग-बबूला हो उठा और स्वयं अपने सेनापतियों के साथ संत तक पहुँचा। वहाँ जाकर बोला, 'जानते हो तुमने जिस व्यक्ति का अनादर-अपमान किया है, वह विश्व-विजेता है।' संत हँसा और कहा, 'तुम स्वयं को विश्व-विजेता कहते हो, देखो, मेरे आसपास कुछ मक्खियाँ मँडरा रही हैं, इन मक्खियों पर भी अपनी विजय कर दिखाओ। जरा इन्हें अपने काबू में कर दिखाओ।'

सिकंदर क्रोध से तमतमाने लगा। उसे अपने सेनापतियों के सामने अपमानित होना पड़ रहा था। क्रोध से भरकर उसने अपनी तलवार खींच ली और चिल्लाकर कहा, 'फकीर! सिकंदर चाहे तो तुम्हारी गर्दन अलग कर सकता है।'

संत ने बड़े शांत भाव से कहा, 'अगर कर सकते हो तो कर ही डालो। हम भी देखेंगे कि कैसे हमारे सामने हमारी काया गिरती है। जो मरणधर्मा है, वह तो मृत ही है और जो जीवित है, वह सौ बार कटकर भी जीवित ही रहेगा। हम भी तो देखें, तुम कैसे काटते हो, हम भी तो अपनी मृत्यु देखें, हम भी अपनी मृत्यु पर नृत्य करें। मिट्टी को तो मिट्टी में ही मिलना है। और सिकंदर! न केवल मेरी मिट्टी बल्कि कुछ दिन बाद तुम्हारी मिट्टी भी इसी मिट्टी में मिलने वाली है। और मैं जानता हूँ तुम मुझे मारकर भी न मार पाओगे और तुम्हारे सारे सेनापति, हकीम और वैद्य तुम्हें बचा नहीं पाएँगे।'



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और सभी जानते हैं सिकंदर गिड़गिड़ाता रहा, लेकिन उसे कोई बचा न सका।

मुझसे लोग पूछते हैं– आपको बराबर नींद आती है। मैं बताता हूँ मुझे बड़े चैन की, आराम की नींद आती है। जब सोना चाहूँ नींद ले लेता हूँ और जब तक जागना चाहूँ जागा रहता हूँ। मेरे हृदय पर कोई बोझ नहीं है। किसी दुश्चिंता का चक्र नहीं है, आने वाले कल की फिक्र नहीं है।

महावीर का मार्ग ऐसे युद्ध का मार्ग है, जिसे मैं अयुद्ध की संज्ञा दूँगा। ऐसी हिंसा का रास्ता है, जिसे मैं अहिंसा का मार्ग कहूँगा। यहाँ वह दृढ़ता है, जो करुणा बनकर आती है। युद्ध तो करना ही है, संघर्ष तो करना ही है पर बाहर किसी पर हथियार चलाकर नहीं, वरन् अपने ही भीतर पड़ी जन्मों-जन्मों की वृत्तियों के साथ युद्ध करना है। जब लड़ना ही है तो एक बार स्वयं से लड़कर भी देख लो। और किन्हीं तलवारों से यह युद्ध नहीं करना है, अपने भीतर के द्वन्द्व से द्वन्द्व करना है। गीता प्रारम्भ होते ही कहती है 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'– यह कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है। और यह कुरुक्षेत्र कहीं बाहर नहीं, हम सबके भीतर है।

आप सोचते होंगे– हजारों वर्ष पहले कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध हो चुका है। वह तो मात्र प्रतीक है। अपने भीतर झाँको, क्षमा और प्रेम के युधिष्ठिर, काम-क्रोध-वासना के दुर्योधन हर समय हमारे भीतर सक्रिय रहते हैं। कभी दुर्योधन, तो कभी युधिष्ठिर हावी हो जाता है। कभी सत्य जीतता हुआ मालूम होता है, तो कभी असत्य सत्य पर शासन करता हुआ जान पड़ता है। हमारे भीतर अन्तर-संघर्ष, अन्तर-द्वन्द्व जारी रहता है। पाँच मिनट के लिए भी तुम शांति का संवहन न कर पाओगे कि भीतर युद्ध शुरू हो जाता है। यहाँ तक कि सोए भी हो, तो सपने में युद्ध कर रहे हो, जागे हो, तो विचारों में युद्ध जारी है।

साक्षीत्व में ध्यानपूर्वक जीने वाला व्यक्ति, इस भीतर के अन्तर-द्वन्द्व से निर्द्वन्द्व हो जाता है। वह तो चौराहे पर खड़े यातायात नियंत्रित करने वाले सिपाही की तरह तटस्थ हो जाता है। उसे कोई मतलब नहीं यातायात चाहे जिधर से आए या जाए। वह तो चक्की में लगी कील की तरह तटस्थ है। धुरी में लगी हुई कील की तरह जो तटस्थ रहता है, वह चाहे जितना चल - फिर आए तब भी जहाँ होता है वहीं-का-वहीं रहता है। चलने वाला शरीर चलता है, रुकने वाली आत्मा वहीं स्थिर है। गृहस्थ वह नहीं है जो घर में रहता है और संन्यस्त वह नहीं है जिसने दीक्षा ले ली है। गृहस्थ वह है जिसके पाँव तो रुके हैं पर मन बहता रहता है और संन्यासी वह है जिसके पाँव तो चलते हैं पर मन स्थिर है, स्थितप्रज्ञ है। जिसका मन टिक गया है पर पाँव सतत भ्रमण कर रहे हैं वह संत। और गृहस्थ वह जो अपने पाँव एक घर में, एक परिवार में, एक स्थान पर रख चुका है, लेकिन मन दिन-रात दौड़ता रहता है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संत वह जो शांत है। तुम संतों के सान्निध्य में संत न बन पाए तो क्या, शांत तो हो ही सकते हो। संत के पास जाकर हमारे अन्तर्घट में यदि शांति का झरना निःसृत न हुआ तो वह संत, संत न हुआ। संत का चित्त शांत है, उसका आभामंडल निर्मल है, तो निश्चित ही उसके पास जाने से, पास बैठने से भीतर शांति का स्रोत, शांति का संगीत, शांति का छत्र हमारे आसपास निर्मित हो जाता है, स्वयमेव अनायास।

मानवजाति का इतिहास हिंसा से भरा हुआ है। हम बातें भले ही अहिंसा की करते हों, करुणा के गीत गाते हों लेकिन अन्दर तो हिंसा ही भरी है। कोई भी जन्म से अहिंसक और करुणावान नहीं होता। अहिंसा उसे लानी पड़ती है, करुणा आत्मसात् करनी होती है। हमारा अतीत पशु का रहा है लेकिन भविष्य परमात्मा होने का है। हमारा वर्तमान यदि मनुष्य का न होता, तो हर भविष्य भी पशुता से ही गुजरता।

पिछले पच्चीस सौ वर्षों में केवल भारत में ही पाँच हजार युद्ध लड़े गए। आप जानते हैं कि एक संस्कृति के विकास में बीस वर्ष लगते हैं, तो इन युद्धों से कितना विनाश हुआ? विकास की धारा रुक ही गई। हम बातें तो अहिंसा की करते हैं, मंचों पर से अहिंसा के कपोत उड़ाते हैं, शांति के श्वेत कबूतर उड़ाते हैं। फैक्ट्री बम की चलाएँगे और बात अहिंसा की करेंगे। बात 'सत्यमेव जयते' की करेंगे और भ्रष्टाचार में डूबे मिलेंगे। हमारे यहाँ ज़्यादा हिंसा है, अहिंसा कम है। हम आतंकवाद और उग्रवाद फैलाते हैं, बम और कारतूस बनाते हैं, ये सारी व्यवस्थाएँ करने वाले हम लोगों में से ही है। बाहर से तो मनुष्य बहुत सात्विक, अच्छा और पवित्र दिखाई देता है लेकिन अंदर आतंक और उग्रता के भाव गहराई तक जमे हुए हैं। विभिन्न शांति संगठनों के रहते देश तो नहीं लड़ते, पर समाज-समाज ही लड़ रहे हैं। हथियारों से नहीं तो बातों से ही लड़ रहे हैं। लड़ाई का मुद्दा न मिले तो किसी मंदिर या तीर्थ को ही माध्यम बनाकर लड़ेंगे। लड़ाई तो हमारी प्रकृति है, प्रवृत्ति है। 'जंग तो खुद ही एक मसला है, जंग क्या खाक मसलों का हल देगी?' जो स्वयं ही समस्या है, वह हमें समाधान कैसे दे पाएगी?

ईराक ने इतना युद्ध करके क्या पाया? सिर्फ खोया ही खोया। कोई भी अपने अहंकार और दर्प को रखने के लिए युद्ध के मैदान में जाएगा तो सर्वनाश ही होगा। केवल बीसवीं सदी में हुए युद्धों में बारह करोड़ से अधिक लोग मारे गये हैं। इसलिए 'ए शरीफ इन्सानों! जंग टलती रहे, तो बेहतर है, मेरे और आपके आंगन में शमा जलती रहे, तो बेहतर है।' प्रेम, करुणा और अहिंसा की शमा का जलना ही श्रेष्ठ है। 'बरतरी के सुबूत की खातिर खूं बहाना ही क्या जरूरी है, घर की तारीकियां मिटाने को घर जलाना क्या जरूरी है'- अपने बड़प्पन, अपने अहंकार और अपने स्वाभिमान को दिखाने के लिए क्या लड़ना जरूरी है? माना घर में गहन अंधकार है



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन उसे मिटाने के लिए क्या घर को ही जला देंगे? लड़ाइयों के और भी कुरुक्षेत्र हैं सिर्फ यह जंगल ही नहीं है– जो जिन्दगी तुम्हें मिली है वह खैरियत के लिए है, कल्याण के लिए है। तुम्हारी मेधा, मनीषा, बुद्धि की प्रगति के लिए तुम्हें यह जीवन मिला है। सिर्फ जुनून, उन्माद, विक्षिप्तता में जीवन नष्ट न करो। इस पीड़ा से भरी दुनिया में कुछ ऐसे दीप जलाएँ, ऐसे इन्तज़ाम करें कि इसे कुछ शान्ति का सहारा मिल सके। प्रेम का संबल मिल सके। अहिंसा और करुणा का आधार मिल सके।

महावीर कहते हैं– वह युद्ध मैंने लड़ा है। वे निमंत्रण देते हैं कि आओ और लड़ो अपने आप से। एक जंग है जो भीतर लड़ी जा सकती है, यह वह जंग है जिसमें खून-खराबा नहीं होता। यह वह जंग है जिसमें किसी को पराजित नहीं किया जाता बल्कि सारी दुनिया चरणों में स्वत: समर्पित हो जाती है। एक सम्राट तो भय दिखाकर झुकाएगा, पर एक संत की करुणा और प्रेम से तुम स्वयं ही जाकर झुक जाओगे। झुकाया तो क्या झुके, स्वयं ही झुके तो झुकना सच्चा हुआ।

महावीर के कानों में कीलें ठोंकी जा रही थीं। वे निश्चल ध्यान में लीन थे। ग्वाले ने कहा– तुम बहरे होने का नाटक करते हो, अभिनय करते हो, लो मैं तुम्हें बहरा ही बना देता हूँ। कानों में कीलें ठुक रही हैं। कहते हैं कि देवों के आसन डोलायमान हो गए, देव दौड़कर चले आए और महावीर से कहा– प्रभु आपकी सुरक्षा का हमें अवसर दें। महावीर ने कहा– मुझे तुम्हारे सहयोग की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। देव बोले - प्रभु यह आपके कानों में कीलें ठोक रहे हैं। महावीर मुस्कराए और बोले– तुम्हें कानों में कीलें ठोकी जाती दिखाई दे रही हैं, लेकिन वे तत्त्व जो इन कीलों को ठोके जाने के बावजूद जाग रहा है, दिखाई नहीं देता। भीतर जो आत्म-विजय, इन्द्रिय-विजय और कषाय-विजय हो रही है, वह विजय तुम्हें दिखाई नहीं देती। तुम्हें तो लग रहा है कि कानों में कीलें ठुक रही हैं, कानों से खून बह रहा है। ये कान आज नहीं तो कल गिरने ही हैं, मगर इस गिरने के मध्य भी कोई तत्त्व है, जो अविजीत रहा है। कान तो मिट्टी हैं और इन्हें मिट्टी ही होना है चाहे बचाया जाए या न बचाया जाए। मगर मिट्टी होने से पहले इस माटी के दीए में ज्योत प्रकट हो रही है, वह जीत रहा है। कानों में कील ठुकवाते वक़्त भी कोई जीत रहा है, विदेह हो रहा है, जीवन-मुक्ति का आनन्द और स्वाद ले रहा है।

महावीर का मार्ग भीतर का मार्ग है। इस मार्ग पर चलने के लिए कुछ सूत्र हैं–

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जए जिणे
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ।
पंचिंदियाणि कोहं माणं मायं तहेव लोहं च।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं।

सूत्र कहता है कि जो दुर्जेय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है, उसकी विजय ही परम विजय है। पाँच इंद्रियाँ क्रोध, मान, माया, लोभ और मन ये ही वास्तव में दुर्जेय हैं। एक स्वयं को जीत लेने पर सभी जीत लिए जाते हैं।

हम सूत्र में प्रवेश करें इसके पहले सूत्र की पृष्ठभूमि को पहचानें। कहते हैं, मिथिला नगरी का नरेश नमि, महीनों से भयंकर दाह-ज्वर से पीड़ित था। ज्वर के कारण उसका शरीर जलता था। वह तड़पता रहता था। दूर-दूर से वैद्य-हकीम पहुँचे, परन्तु उपचार न हो पाया। अंत में किसी संत ने कहा कि नमि के शरीर पर लाल चंदन घिसकर लगाया जाए, तो उनकी जलन शांत हो सकती है।

नमि की पत्नियाँ चंदन घिसने बैठीं। अब इतनी पीड़ा है तो घर के सभी सदस्य चाहते हैं कि हम भी इस पीड़ा को शान्त करने में सहायक हो जाएँ। पीड़ा को लिया तो नहीं जा सकता, मगर पीड़ा को सहलाया तो जा सकता है। नमि की पत्नियाँ जब चंदन घिस रही थीं, तो भयंकर पीड़ा के कारण उनके हाथों में बजने वाले कंगन और चूड़ियों की ध्वनि भी नमि को कर्कश प्रतीत हो रही थी। नमि व्याकुल हो उठा। उसने कहा– मुझसे यह आवाज, यह शोरगुल सहन नहीं होता, मैं बहुत जल रहा हूँ। कम-से-कम यह शोर, यह आवाज़ तो बंद कर दो। राजरानी ने चंदन तो घिसा, पर आवाज़ न आने दी। चंदन नमि के शरीर पर लगाया गया, उसे कुछ शांति मिली पर उसके मन में प्रश्न उठा। उसने राजरानियों से पूछा, 'क्या चंदन तुम लोगों ने नहीं घिसा?' रानियों ने कहा, 'राजन्! हमने ही घिसा है।'

'तो क्या चंदन घिसते समय कंगन और चूड़ियाँ उतार दी थीं'– नमि ने प्रश्न किया।

'हाँ नरेश! सौभाग्यसूचक के रूप में एक-एक कंगन ही हाथ में रखा, शेष सभी कंगन और चूड़ियाँ उतार दीं।'

नमि चौंके, 'तो इसलिए आवाज नहीं आ रही थी'– राजरानियाँ चुप हो गईं। लेकिन नमि भीतर मुड़ गए, अन्दर उतर गए। तब धरती पर नया संबुद्ध पुरुष प्रकट हुआ जिसने जाना कि जहाँ अनेक हैं, वहीं पीड़ा है।

जहाँ पर अनेक का भाव है, वहीं पर पीड़ा है। जहाँ एकत्व है, एक का सुख है, वहाँ न कोई शोर है, न पीड़ा है और न दुख है। जहाँ एकाकीपन की संवेदना है, वहाँ पूरी तरह शांति है, सुख है, समृद्धि है। जहाँ शरीर, इन्द्रिय, मन और इनसे आगे धन और परिवार की आसक्ति भरी बेतुकी भीड़ है, वहीं दुःख है। जहाँ केवल एक



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मभाव है, वहाँ दु:ख नहीं है। और तब नमि तत्काल अपनी शैय्या से उठ गए। न जाने उनमें कहाँ से चेतना आ गई। वे उठे और राजमहल से बाहर जाने लगे। तभी राजपुरोहित पहुँचा। उसने पूछा, 'भन्ते! आप जा रहे हैं?'

राजपुरोहित समझ गया लेकिन यह जानने के लिए कि वास्तव में यह व्यक्ति विरक्त हुआ है या नहीं, त्याग की यह ज्ञान-चेतना स्थिर है या यह कोई क्षणिक उबाल है, उसने ऐसी माया रची कि सारी मिथिला नगरी जलने लगी। राजपुरोहित ने कहा, 'आप जा रहे हैं, और आपकी मिथिला नगरी जल रही है। आपको राजधर्म का पालन करने के बाद ही मुनिधर्म की दीक्षा लेनी चाहिये।' नरेश ने कहा, 'राजपुरोहित! अगर मिथिला नगरी जलती है, तो इसमें मेरा क्या जलता है? जब मैं जल रहा था, तब यह सारी मिथिला नगरी मिलकर मुझे न बचा पाई और आज मैं शांति के मार्ग पर जा रहा हूँ तब कहाँ इस जलती हुई मिथिला के बारे में सोचूँ। मेरी पीड़ा को मिथिला न दूर कर सकी फिर मैं कैसे इसकी पीड़ा दूर कर पाऊँगा? ये कदम जो उठ चुके हैं, आगे ही बढ़ेंगे। अब ये एकाकीपन का आनन्द लेंगे।'

नमि का यह वचन वास्तव में भेद-विज्ञान की बुनियाद है। यह तो नगरी जल रही थी, अगर नमि का शरीर भी जल रहा होता, तब भी नमि यही कहते शरीर जलता है, तो इसमें मेरा क्या जलता है। राजपुरोहित ने दूसरी इहलीला रची और कहा, 'सम्पूर्ण मिथिला नगरी दुश्मनों से घिर गई है। सम्राट! आप आगे बढ़कर सेना का नेतृत्व करें और शत्रुओं को परास्त कर अपनी यशोपताका मिथिला पर फहराएँ।'

तब ये सूत्र जो अभी मैंने कहे हैं, नमि ने राजपुरोहित से कहे। ये वही सूत्र हैं जो जिनत्व के मार्ग की आधारशिला हैं, इन्हीं सूत्रों से महावीर का मार्ग जिनत्व और अरिहंत का मार्ग कहलाता है। तब कहा गया, जो हजारों-हजार योद्धाओं को जीत लेता है, फिर भी विजेता नहीं बन पाता लेकिन जो स्वयं को, एक अपने को जीत लेता है वही विजेता होता है। जो स्वयं को जीत लेता है, उसकी विजय ही परम-विजय है।

राज्य-रक्षा, राज्य-विस्तार, शत्रु और चोर-लुटेरों के दमन की अपेक्षा अन्तर का राज्य, आत्मदमन, आत्मरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। बाहर की दुनिया को बचा लेने पर भी बाहर की सुरक्षा का क्या अर्थ है अगर अन्तर्जीवन सुरक्षित नहीं है। बाहर के हजारों शत्रुओं को जीत लेने की बजाय आन्तरिक शत्रुओं पर प्राप्त की जाने वाली विजय ही वास्तविक विजय है। यह विजय ही मनुष्य को अरिहंत बनाती है। वही विजय, विजय होती है जिसमें व्यक्ति स्वयं को जीत लेता है, अन्यथा जीवन भर दूसरों को जीतता चला जाए, फिर भी विजय हासिल नहीं कर पाता। अन्तत: परास्त हो जाता है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट अशोक ने कलिंग-युद्ध किया। वहाँ लाखों व्यक्तियों का संहार हुआ। अशोक की विजय हुई। वह और उसके सेनापति विजय का जश्न मना रहे थे। विजय के उन्माद में विक्षिप्त सम्राट के पास एक बौद्ध भिक्षु आया। उसने कहा, 'सम्राट! तुम अपना विजयोत्सव मनाओ, लेकिन थोड़ा-सा समय मुझे दो और इस समय जैसा मैं कहूँ वैसा ही तुम करो। सम्राट सहमत हो गया। जीत के नशे में तो वह कुछ भी करने को तत्पर हो सकता था। सम्राट ने भिक्षु का सम्मान किया। भिक्षु उसे युद्ध के मैदान पर ले गया, और कहा- कुछ क्षणों के लिए यहाँ खड़े हो जाओ। युद्ध-भूमि से वीभत्स चीत्कार आ रही थी। चारों तरफ करुण क्रन्दन हो रहा था। घायल योद्धा अशोक को प्रताड़ित कर रहे थे। उसके विश्व-विजय को आततायी की विजय कह रहे थे। वहाँ की नर-नारियाँ, युवा-वृद्ध सभी सम्राट को अपशब्द बोल रहे थे, उसकी विजय की निंदा और भर्त्सना कर रहे थे। अपनी विजयपताका फहराने के लिए इतना भयंकर नरसंहार! सम्राट् सिहर उठा। वह एक पल भी वहाँ न रुक सका।

धरती पर एकमात्र सम्राट अशोक ही वह सम्राट हुआ, जो युद्ध लड़कर युद्ध से विमुख हो गया, अन्यथा युद्ध की पिपासा कभी मिटी है? एक वही सम्राट है जिसने युद्ध के बाद अहिंसा की दीक्षा ग्रहण की। उस चीत्कार, उस क्रन्दन ने उसकी आत्मा को जगा दिया, करुणा को जाग्रत किया और अहिंसा को गर्व है, करुणा को गर्व है कि क्रूरता के गर्भ से करुणा का स्रोत निःसृत हुआ और सम्राट अशोक जैसा नरेश पाया।

महावीर के रहते महावीर के भक्त उनकी चन्दन-मूर्ति के लिए लड़ पड़े। पहले के युद्धों में स्वाभिमान के लिए युद्ध नहीं होता था। बिल्कुल छोटी-छोटी निरर्थक-सी बातों के लिए लड़ाइयाँ हो जातीं। प्रसेनजित और बिम्बसार के मध्य एक दासी को लेकर युद्ध हो गया। आज युद्ध के रूप बदल गए हैं। कभी धन के लिए कभी भूमि के लिए युद्ध हो जाता है। युद्ध के रूप बदल सकते हैं, पर युद्ध जारी है। पहले दुश्मनों से लड़ते थे, अब घर वालों को ही दुश्मन मान बैठे हैं। किसकी लड़ाई रह पाई दुनिया में। तुम कौन से यहाँ सदा ही रहने वाले हो, जो जीत पाओगे।

मेरा तो मानना है हम सभी पृथ्वी पर एक-दूसरे के परिपूरक हैं। कोई बौद्धिक रूप से, कोई साधनागत तरीके से, कोई आर्थिक ढंग से, कोई शारीरिक रूप से, कोई समय देकर, सभी अपने अनुसार सहयोग करते हैं। हम एक-दूसरे को सहयोग देकर ही मिले-जुले रूप में रह पाएँगे। टूटने में तो कुछ नहीं है। एकत्व बोध के साथ आत्म-विजय के लिए भीतर उतरते हो तब लड़ाई किसी से होगी ही नहीं। यदि हम दुनिया को प्रेम का संदेश देना चाहते हैं, तो इसका प्रारम्भ घर से ही करना होगा। परिवार किसी समूह का नहीं, अपितु एक दूसरे के लिए त्याग का नाम है,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारिवारिकता का, आत्मीयता का नाम है।

बाहरी रूप में सबसे हिलमिलकर प्रेमपूर्वक रहो और जब भी स्वयं को एकान्त में पाओ अन्दर उतरो, आत्म-निरीक्षण करो कि क्या स्थिति है। कितना क्रोध, मान, माया, लोभ है। अपनी व्याकुलता को परखो, अपने भीतर होने का प्रयास करो। अपने क्रोध से, अहंकार से लड़ो, उन्हें रूपान्तरित करो। अक्रोध, क्षमा और प्रेम से क्रोध पर विजय पाओ। अहंकार को विनय से परास्त करो। लोभ पर दान और सहयोग से विजित हो जाओ। आन्तरिक युद्ध आत्म-विजय देगा। यह विजय जो जीवन को अनुपम प्रसाद से भरेगी। जिस विजय के सामने विश्व-विजय भी फीकी है। जीवन में शाश्वत सुख व आनन्द रहता है। महावीर ने ऐसा ही जाना। आप सब भी उसी अनुभव से गुजरें यही कामना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# लोभ पर लगाएँ लगाम

श्रावस्ती नगरी में कपिल नाम का युवक अध्ययन के लिए गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ। गुरुकुल की परम्परानुसार कपिल भोजन के लिए शालिभद्र सेठ के यहाँ जाता था। प्रतिदिन, एक दासी उसे भोजन करवाती थी। योगानुयोग, प्रतिदिन के मेल-मिलाप से दोनों के मध्य प्रेम-संबंध स्थापित हो गए। तभी उस नगर में एक मेला आयोजित हुआ। दासी ने कपिल से निवेदन किया कि कल हमें मेले में शामिल होना है, लेकिन खर्चे के लिए हमारे पास पैसा नहीं है। तुम ऐसा करो कि यहाँ जो नगर सेठ है, उसके पास प्रातःकाल पहुँच जाओ। प्रातःकाल जो ब्राह्मण सबसे पहले उसके यहाँ दान लेने आता है, वह सेठ उसे दो माशा स्वर्ण देता है।

कपिल ने अपनी प्रेमिका को संतुष्ट करने के लिए नगर श्रेष्ठि के यहाँ दान लेना स्वीकार किया। अगला दिन ही मेले का दिन था। अगर सुबह चूक गया तो दान लेने से वंचित रह जाऊँगा। रात्रि में ऐसा विचार करते हुए सो गया, पर आधी रात को उठ बैठा और सोचने लगा शायद ब्रह्ममुहूर्त्त की वेला आ गई। सुबह हो उससे पहले ही मैं नगर श्रेष्ठि के द्वार पर जाकर बैठ जाऊँ, ताकि प्रभात हो और दान मिल सके।

वह गुरुकुल से चल दिया। वह कोट पार कर ही रहा था कि चौकीदारों ने उसे पकड़ लिया। अर्धरात्रि के समय कोई नगर कोट से निकले तो निश्चित वह चोर ही होगा, ऐसा चौकीदारों ने निर्णय लिया। कपिल पर चोरी का आरोप लगाया गया। कपिल ने बहुतेरा कहा कि वह चोर नहीं है, पर उसकी बात को स्वीकारा नहीं गया



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उन्होंने उसे कारागार में बन्द कर दिया।

प्रात:काल जब उसे राजा के समक्ष उपस्थित किया गया, तो उसने सच-सच सारी आपबीती राजा को बयान कर दी। सम्राट कपिल की सच्चाई, सादगी और निर्भीकता से प्रभावित हुआ। उसने कहा- ब्राह्मण, तुम दो माशा स्वर्ण के लिए निकले थे लेकिन चोर के रूप में यहाँ हाजिर हुए। मैं तुमसे वादा करता हूँ कि तुम जो चाहोगे वह मैं तुम्हें दूँगा। कपिल का मन, उसकी चेतना लोभ से अभिभूत हो उठी। उसने सोचा - जब सम्राट दे रहा है, तो दो माशा सोना क्या माँगना, क्यों न सौ स्वर्ण-मुद्राएँ ही माँग लूँ। जैसे ही माँगने को उद्यत हुआ, मन में विचार आया, सौ मुद्राओं से क्या होगा। कुछ सुख भोगूँगा उसमें ही ये मुद्राएँ समाप्त हो जाएँगी। क्यों न हजार स्वर्णमुद्राएँ माँग ली जाए और जब देने वाला स्वयं सम्राट है, जिसने कह दिया कि तुम जो माँगोगे वह मिलेगा। लेकिन हजार में भी तृप्ति नहीं होगी। इसके बाद भी नगर में लखपति रहेंगे जिनका मुझ पर अंकुश रहेगा; क्यों न एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ माँग ली जाएँ। मन बहता गया, लोभ बढ़ता गया। दो माशा स्वर्ण लेने आया कपिल, सौ, हजार, लाख, करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की अभिलाषा करने लगा। तब भी सोचता रहा कि नगर सेठ तो फिर भी बड़ा ही रहेगा। अगर नगर श्रेष्ठि का पद भी माँग लूँ तब भी राजा तो मुझसे ऊपर ही होगा। क्यों न राजा से साम्राज्य ही माँग लूँ।

बहुत देर हो चुकी थी। सम्राट ने कहा - कपिल तुम क्या सोच रहे हो, जो माँगना हो माँगो। तुम भी क्या याद करोगे कि नगर सेठ के द्वार पर पहुँचना चाहता था और राजा के द्वार पर पहुँच गया। आज तो अपनी अभिलाषा पूर्ण कर ही लो। जैसे ही वह कहने को हुआ कि सम्राट मुझे तुम्हारा राज्य चाहिए, तत्काल उसकी चेतना लौटी कि अरे, वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया। दो माशा सोना लेने के लिए याचक ब्राह्मण, पल भर में राजा से, दाता से, उसका राज्य छीनने को तैयार हो गया।

अर्थ स्पष्ट हो गया कि जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता है। साफ जाहिर हुआ कि चाह की पूर्ति करने से चाहत और बढ़ जाती है। हमारी कामना की प्यास तृप्त नहीं होती। वह और बढ़ जाती है। तो, क्या पाने से ही जीवन की तृप्ति है? नहीं! मन जैसे ही शान्त हुआ वे दो स्वर्ण-मुद्राएँ भी दिमाग से चली गई। तब उसने आँखों से अश्रु बहाते हुए राजा से कहा, ये आँसू आपके लिए नहीं है। मुझे स्वयं पर रोना आ रहा है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। सम्राट बोला - यह तुम क्या कह रहे हो ब्राह्मण, तुम तो पाने के लिए आए थे और अब कह रहे हो कि कुछ नहीं चाहिए। हाँ, सम्राट अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। चाहने से कभी तृप्ति नहीं हुई। पाने से कभी तृप्ति न होगी। अलोभ से ही लोभ को शान्त किया जा सकता है। लोभ लोभ से नहीं, अलोभ से ही शान्त होता है। और उसी समय कपिल ने अपने हाथों को आकाश की



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओर उठाया और अश्रु बहाते हुए ये सूत्र कहे।

अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्ख पउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइं न गच्छेजा।।
कसिणं पिजो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया।।

कपिल ने आकाश की ओर अपने हाथ उठाए और आकाश से कुछ उत्तर पाने की अपेक्षा में कुछ गाने लगा, गुनगुनाने लगा– हे प्रभु! इस अध्रुव अशाश्वत और दुख-बहुल संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है जिससे मैं दुर्गति में न जाऊँ। यह धन-धान्य से भरा हुआ सारा विश्व भी किसी एक व्यक्ति को दे दिया जाए, तब भी उसकी तृष्णा को पूरा नहीं किया जा सकता, उसके लोभ को शान्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि तृष्णा दुष्पूर है। लाभ लोभ को बढ़ाता है।

दो माशा स्वर्ण की इच्छा रखने वाला कपिल ब्राह्मण करोड़ों स्वर्ण-मुद्राएँ पाने की इच्छा रखकर भी तृप्त न हो पाया।

कपिल ने ये गाथाएँ राजसभा में कही हैं कि इस दुख-बहुल संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है जिससे मैं दुर्गति में न जाऊँ। पहली बात, यहाँ तो सभी अध्रुव, अशाश्वत और दुख-बहुल हैं, प्रतिक्षण हर वस्तु बदलती जा रही है। यहाँ स्थायित्व तो किसी चीज में नहीं है। दीपक जल जरूर रहा है, लेकिन हर अगले क्षण में उसकी लौ बुझने की ओर है। यह मकान खड़ा दिखाई देता है, पर प्रतिक्षण जर्जर-खंडहर हो रहा है। खंडहर होता हुआ दिखाई नहीं देता, पर खंडहर हो रहा है। काल-कुंभ की रेत क्षण-क्षण गिर रही है। व्यक्ति सोचता है – वह अचानक बूढ़ा होगा, पर ऐसा नहीं होता। हां, ऐसा हो कि हम रात में जवान सोएँ और सुबह वृद्ध होकर जागें, तब तो देख लेंगे कि अरे, यह क्या हो गया, लेकिन जवानी, वृद्धावस्था और मृत्यु धीरे-धीरे आती हैं। हम बहुत धीरे-धीरे लेकिन प्रतिक्षण मृत्यु के करीब पहुँच रहे हैं। होता यह है कि रात को हम सोते हैं, सुबह जागकर जब दर्पण में अपना चेहरा देखते हैं तब बिल्कुल वैसा ही पाते हैं जैसा रात को जब सोए थे, तब था। हमें पता ही नहीं चलता कि रात भर में हम कितना बदल गये। कितना खून बदल गया, कितने विचार बदल गए, यह शरीर बदल गया। ये बाल क्या यूँ ही सफेद हो गए हैं? धीरे-धीरे सब बदल रहा है।

तुमने अपने बचपन की तस्वीर देखी है। क्या आज तुम वैसे ही हो? क्या यौवन की चपलता और शक्ति अब भी यथावत् है? फिर कैसे परिवर्तन हो गया? परिवर्तन तो हर क्षण हो रहा है। जो तुम कल थे वह आज नहीं और जो आज हो वह आने वाले



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल में नहीं रहोगे। यह सब इतना धीरे-धीरे घटित होता है कि तुम जान ही नहीं पाते। कभी-कभी तो जानकर भी अनजान बने रहते हो। इसी तरह एक दिन जीवन की कहानी समाप्त हो जाती है।

सुबह होती है, शाम होती है
ज़िंदगी यूँ ही तमाम होती है।

जीवन का सूर्य प्रतिदिन उदित होता है, दोपहर होती है, सांझ ढलती है, रात आती है और यों जीवन की कहानी खत्म हो जाती है, जीवन की इहलीला ही समाप्त हो जाती है। यहाँ सभी कुछ अध्रुव और अशाश्वत हैं। दुख-बहुल है। न धन से, न परिजनों से जीवन बचाया जा सकता है और न ही काम, क्रोध, अहंकार, पद-प्रतिष्ठा से स्वयं को सुखी या शाश्वत किया जा सकता है। हमारा नाम भी अपना नहीं है। यह भी किसी पंडित या माता-पिता का दिया हुआ है। तुम सोचते हो तुम अमुक हो और जीवन भर इस नाम से चिपके रहते हो। तुम मनुष्य बनकर नहीं जीते, इस-उस नाम को जीते हो। कुछ अच्छा काम किया और अपने नाम की घोषणा करवा दी। अरे! यहाँ तो अपना ही पता नहीं है, किस-किस का नाम याद रखें।

मंदिर बनवाया। दानदाताओं की लम्बी सूची संगमरमर पर उकेरी गई। दर्शनार्थियों में किसे फुर्सत है कि इसे पढ़े, लेकिन नहीं, नाम तो लिखा ही जाना चाहिए। जिसे अंततः पत्थर ही हो जाना है, वही पत्थरों पर नाम खुदवाता है। हालांकि कोई भी पढ़ता नहीं है, हाँ! खुद ही पढ़कर संतुष्ट होता रहता है। दूसरे भूल से कभी पढ़ भी लें तो जलेंगे, निंदा करेंगे। कहेंगे मैं इसे खूब जानता हूँ सारा धन भ्रष्ट तरीके से कमाया और दान देकर दानदाता बन बैठा।

इस दुनिया में न नाम अमर है, न पद अमर है, न प्रतिष्ठा ही सदा बनी रहती है। जीवन ही चला गया, तो पीछे कौन अमर रहता है। मनुष्य काम-भोग से गुजरता है कि शायद इससे सुख मिलेगा। देखता है कि पानी में आटा आया और मछली धोखा खा रही है, हर बार जाल में फँस रही है। आटे के साथ काँटे में उलझ कर पकड़ी जा रही है। आटा आता है मगर काँटे में बिंधकर। पहले-पहल तो बाँधा जाता है,फिर खुद ही बंध जाता है।

यह बात जानने के कारण ही कपिल गाता है - इस अध्रुव, अशाश्वत, दुख-बहुल संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मेरी दुर्गति न हो! वह प्रश्न उठा रहा है, क्योंकि यहाँ तो तुम जो भी करोगे, प्रतिध्वनित होकर वापस आएगा। गीत गाओगे, गीत मिलेंगे। दुर्वचन कहोगे, दुर्वचन मिलेंगे। यदि जीवन में दुर्व्यवहार किया ही नहीं, तो दुर्व्यवहार आएगा भी नहीं। यहाँ तो प्रतिध्वनि होती है। जैसे जंगल



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में जाकर आवाज लगाओ, तो अपनी आवाज लौटती है, बरसती है। ठीक ऐसे ही हम जैसा कर्म करेंगे, दुर्गति वाला तो दुर्गति होगी, सद्गति वाला तो सद्गति होगी।

आपने देखा होगा मंदिरों में शिखर बनाए जाते हैं। किसी भी धर्म के उपासना गृह में चले जाइए, आपको ऊँचे-ऊँचे गुम्बद या शिखर मिलेंगे। क्यों? क्यों नहीं आपके रहने वाले घरों की तरह सीधी-सादी सी छत बना दी जाए? केवल इसीलिए कि तुम जो मंत्र बोलो, वे वापस आकर तुम पर बरसें। ये मंत्र तुम्हारा ही अभिषेक करें, प्रतिध्वनित होकर। जैसा करोगे वैसा ही पाओगे। यह जानने के कारण ही कपिल कहते हैं कि इस मनुष्य को धन-धान्य से भरा हुआ सारा विश्व भी मिल जाए, तब भी मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य की कामना, इच्छा, तृष्णा, उस अनन्त आकाश की तरह है जिसका कोई ओर-छोर नहीं होता। मन आकाश है और मनुष्य क्षितिज जैसा है। क्षितिज में आकाश को कैसे उँडेला जा सकता है। क्षितिज की सीमा है, मनुष्य की भी सीमा है लेकिन आकाश की तृष्णा, कामना, इच्छा की कोई सीमा नहीं है। मन सोचता है - यहाँ इच्छा पूरी होगी लेकिन इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं होती। क्यों? क्योंकि लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। पाने की लालसा और बढ़ती है, मल्टीप्लाई होती है। बहुत गजब की बात है। जब तक न मिला, पाने की चाहत थी और जब मिल गया, पाने की आकांक्षा दुगुनी हो गई।

लोभ दुष्पूर होता है। लोभ कब्ज़ के रोग जैसा है। शरीर स्वस्थ हो और कब्जियत हो जाए तो अनेक रोग घिर आते हैं। ऐसे ही मन में लोभ हो, तो मन के सौ रोग पनप जाते हैं। चिंता, तनाव, आसक्ति, अवसाद। ढेर सारे रोग। कब्ज़ शरीर का रोग है और लोभ मन का रोग है। जैसे कब्ज़ शरीर के कचरे को अंदर रोके रखता है, वैसे ही लोभ वस्तुओं के परिग्रह को, उनके प्रति ममत्व-बुद्धि को अपने भीतर रोके रखता है, बाँधे रखता है। लोगों को जकड़कर रखता है। गरीब इन्सान की गुरबत तो दिखाई दे रही है लेकिन लोभी छुपा हुआ गरीब है। मुझे तो लोभी से अधिक दरिद्र कोई दिखाई ही नहीं देता। सब कुछ है उसके पास, फिर भी फटेहाल। सिर्फ इकट्ठा करता है, पर इकट्ठा करना किस अर्थ का, अगर उस संग्रह का उपयोग न हुआ। वह धन भी वस्तु में तब्दील हो जाता है, जिसका उपयोग न किया जाए। धनी या निर्धन होना पैसे की अधिकता या कमी पर निर्भर नहीं है। जो पैसे का उपयोग करता है, वह धनवान है और जो उपयोग न करे, वही निर्धन। लोभी जीवन भर निर्धन ही बना रहता है। शास्त्र कहते हैं: मृत्यु के उपरांत लोभी को साँप बनना पड़ता है। वह सर्प-योनि में जन्म लेता है और उस धन पर कुंडली लगाकर उसकी रक्षा में जीवन व्यतीत करता है। न स्वयं उपयोग करता है और न अन्य किसी को करने देता है।

शास्त्र कहते हैं कि लोभी जीव मृत्यु के बाद सर्प-योनि में जाएगा, लेकिन मैं तो



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखता हूँ कि लोभी वर्तमान में ही अपने धन पर सर्प बनकर कुंडली लगाकर बैठा है। उसे अपने धन की सुरक्षा करनी है, केवल चौकीदारी। लेकिन यह बात समझने की है कि एकत्रित करने से धन अपना नहीं हो जाता है, धन का उपयोग करो तब ही धन हमारा अपना है। धन साधन है, साध्य नहीं। साधन का जितना अधिक उपयोग होगा, वह उतना ही अधिक सुखकर होगा, लेकिन हमारी प्रवृत्ति तो साधनों को एकत्रित करने की है। पहले तो वह साधन जुटाता है लेकिन बाद में उन साधनों की हिफ़ाज़त में लग जाता है। साधनों की सेवा करने लगता है। वस्तुएँ तो हमारी सेवा के लिए हैं। लेकिन उल्टा हो जाता है। हम मकान बनाते हैं। अपनी पूंजी लगाकर आलीशान घर बनाते हैं, लेकिन मकान से पूछो कि क्या तुम्हारा मालिक घर में रह रहा है? कभी आपने मकानों को बातें करते हुए सुना है? वे भी बातें करते हैं। मकान कहता है, मेरा मालिक मुझमें नहीं रहता, मैं ही उसके घर में रहता हूँ। मालिक जितना मेरे अन्दर रहता है, उससे अधिक मैं उसके भीतर के घर में रहता हूँ।

मकान बना हुआ तो बाहर है लेकिन वह मालिक के भीतर रहता है। वह अपने मकान से कहीं दूर चला जाए तब भी उसे मकान की चिन्ता रहेगी। मकान उसके भीतर बसा ही रहता है। हम आभूषण पहनते हैं; लेकिन नहीं! आभूषण ही हमें पहने रहते हैं। वे हम पर हावी हो चुके हैं। उन्होंने हमारा स्वामित्व ले लिया। तुम सोचते हो नौकर अपने स्वामी से बँधा है। मगर नहीं! स्वामी ही नौकर से बंधा है। क्योंकि नौकर के बिना उसका काम ही नहीं चलता।

वैभवशाली व्यक्ति से मुझे शिकायत नहीं है। प्रदर्शन के लिए ही सही, वह अपने धन का उपयोग तो कर रहा है। लेकिन लोभी तो धन का उपयोग ही नहीं करता।

देशी और विदेशी इन्सान में यही अन्तर है। देशी तो धन जुटाता है और विदेशी धन खर्च करता है। देशी तो पेटी की चिन्ता करता है और विदेशी पेट की चिन्ता रखता है। इतना पैसा इकट्ठा कर क्या करोगे? इसका कुछ उपयोग करो। अनुपयोगी वस्तुओं को घर से बाहर कर दो। अपरिग्रह भाव से उस सामान को बाहर निकाल दो क्योंकि वह तुम्हारे काम नहीं आता। अनावश्यक सामान, धन, वस्तु सभी को बाहर निकालो। परिग्रह बहुत बढ़ा है। जिस तीर्थंकर ने अपरिग्रह का सिद्धान्त दिया, उसी के अनुयायी सर्वाधिक परिग्रही हैं। हमारा अपरिग्रह का सिद्धांत भी कर्म-काण्ड हो गया है। त्याग ऊपर-ऊपर है, प्रदर्शन बन रहा है, लेकिन मन के भीतर तो परिग्रह की वृत्ति बरकरार है।

मैं तो मानता हूँ जिस परमात्मा ने हमें जीवन दिया है, वही जीवन भर की



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्थाएँ भी हमें देगा। मैं कितना भी प्रयास कर लूँ, फिर भी मुझे उतना ही मिलेगा जितना मेरे नसीब में होगा। न मैंने स्वेच्छा से जन्म लिया है और न ही स्वेच्छा से मरूँगा। साँसें भी अपने आप आ-जा रही हैं। जब जीवन की सारी व्यवस्थाएँ अपने आप हैं, तो अन्य व्यवस्थाएँ भी उसी प्रकृति या परमात्मा पर क्यों नहीं छोड़ देते?

यह परम आस्तिकता है कि व्यक्ति ने अपने को प्रकृति या परमात्मा के द्वारा संचालित होने के लिए छोड़ दिया। परमात्मा व्यक्ति को जीवन बाद में देता है, उसकी व्यवस्था पहले कर देता है। स्वयं को उस प्रकृति, उस परमात्मा, उस कर्म-नियति के सुपुर्द कर दो, सारी व्यवस्था हो जाएगी। हमारा पुरुषार्थ, हमारा कर्म-योग जीवन को संचालित करने के लिए है; धन, सामग्री, वस्तु, जमीन-जायदाद एकत्रित करने के लिए नहीं। हम अधिक से अधिक देने का प्रयास करें। लोभी आत्मा कभी किसी को कुछ प्रदान नहीं कर सकती। कंजूस व्यक्ति प्रेम के योग्य भी नहीं होता। जो धन नहीं दे सकता, वह हृदय कैसे देगा?

जीवन तो लेन-देन का हिसाब है। सिर्फ़ दे-देकर ही काम नहीं चलता, लेना भी पड़ता है। जैसे तुम देकर प्रसन्न होते हो, वैसे ही सामने वाला भी देने की इच्छा रखता है। कोई निर्धन तुम्हारे सहयोग से उन्नति कर गया तो यह न सोचना कि तुमने इसे लखपति बनाया। कभी उसको फोन करना और कहना मित्र, आज तुम्हारी कार भेज देना, मैं भी घूम-फिर आऊँ। इससे उसका हृदय प्रसन्न हो जाएगा। वह सोचेगा मैं उसका ऋणी नहीं, मित्र हूँ, उसने मेरा सहयोग किया, अब मैं भी सहयोग के लिए तत्पर रहूँ। लोभी नहीं दे सकता; अलोभी ही दे सकता है। करुणावन्त, शीलवन्त, प्रेमी हृदय ही लुटा सकता है। जो तुम्हें प्रेम दे रहा है, धन से सहयोग कर रहा है, जान लो वह अलोभी है, लोभमुक्त है। लोभमुक्त होना मुक्ति का प्रथम द्वार है।

क्रोध प्रेम को नष्ट करता है, मान विनय को नष्ट करता है और माया मैत्री का नाश करती है, लेकिन लोभ तो सब कुछ नष्ट कर देता है। विनय और मैत्री सभी को लोभ नष्ट कर देता है। स्वयं को लोभ से बाहर निकालें। लोभी आत्मा पूर्ण नहीं हो सकती। यह मन का रोग है, जो सर्वत्र विनाश करता है। इस मनोरोग से मुक्त होने का प्रयास करें।

हम दान न भी करें, सिर्फ एक संकल्प ले लें कि महीने में एक दिन सबसे पहले आने वाले ग्राहक से बिना लाभ-हानि के व्यवसाय करेंगे। है तो साधारण-सा संकल्प, लेकिन जीवन को रूपान्तरित करने वाला, व्यावसायिक बुद्धि को रूपान्तरित करने वाला सूत्र होगा। महीने में एक दिन निर्धारित कर लें, जो ग्राहक सबसे पहले आए, चाहे वह दस लाख का माल खरीदे या दस पैसे का, उसे जिस भाव में वस्तु लाए हो, उसी भाव में प्रदान कर दें। कभी-कभी बिना लाभ के भी कुछ



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करें। वह व्यवसाय अनेरा हो जाएगा, वह व्यवसाय आपको आनन्द देगा। प्रारम्भ में तो मन अवरोध लगाएगा, कई प्रश्न उठाएगा लेकिन मन की न सुनना, हृदयपूर्वक कार्य करते जाना। कुछ माह बीतने पर इतना आनन्द आएगा कि तुम उस दिन की प्रतीक्षा करने लगोगे कि कब वह दिन आए कि मैं अपने व्यवसाय को सेवा का रूप दे सकूँ। व्यवसाय भी आपके लिए सेवा और धर्म का सूत्रधार हो सकता है।

लोभ तो अपूर है। इसे कभी भरा नहीं जा सकता। परिग्रह को परिग्रह से शान्त नहीं किया जा सकता। वस्तुओं पर अपनी पकड़ को ढीला करो। तुम वस्तुओं से अपने अन्तर-हृदय को भी भर नहीं सकते क्योंकि भीतर वस्तु नहीं जा सकती। मालकियत का दावा छोड़ो। तुम जिन्हें अपना गुलाम बनाते हो, एक-न-एक दिन तुम उनके वस्तुगत गुलाम बन जाते हो, क्योंकि तुम्हें उसकी आदत हो जाती है। उसके बिना तुम्हारा काम ही नहीं चलता। मनुष्य पर जब कोई वस्तु हावी हो जाती है, तभी वह लोभी बनता है।

हम वस्तु के मालिक रहें, वस्तु हमारी मालिक न बन जाए। जीवन में स्वयं की मालकियत होनी चाहिए, लेकिन खुद का मालिक न बन पाने के कारण हम कभी बेटे के, कभी पत्नी के, कभी पुत्र के, कभी नौकर के या शिष्य के ही मालिक बन जाना चाहते हैं। यह भावना भी दूसरों की गुलामी है। हमें लगता है कि हम पत्नी के मालिक हैं लेकिन वास्तव में पत्नी ही हमारी मालिक बन जाती है। पहले तो कहेगी- प्राणनाथ, फिर नाथ, बाद में तो पति की यह दशा होगी कि बेचारा अनाथ ही हो जाएगा। सिर्फ वस्तुओं को ही परिग्रह मत समझो। वे सारी चीजें परिग्रह हैं, जो हमारी स्वामी हो जाती हैं। पहले हमारी मालकियत थी, अब वे मालिक हो गईं। फिर इनमें चाहे वस्तु हो, व्यक्ति हो, विषय हो या अन्य कुछ और; इसमें फ़र्क़ नहीं पड़ता। सामान तो एकत्रित किया जा रहा है, लेकिन मालिक चूक रहा है। सामान बचाकर भी क्या होगा अगर मालिक निरंतर खोता चला जाए। मालिक से ही माल का मूल्य है। आपके होने से मकान का अर्थ है, आपके मर जाने पर वही मकान आपके लिए निरर्थक हो गया।

मैंने सुना है : किसी मकान में आग लग गई। पड़ौसी दौड़े, मौहल्ले वाले दौड़े मकान की आग बुझाने के लिए। सारा मूल्यवान सामान बाहर निकाला जाने लगा। नौकर भी भाग-दौड़ में लग गए। करीब-करीब सारा सामान बाहर निकाल लिया गया। मकान मालिक को खबर दी गई कि आपके मकान में आग लग गई है, वह भी दौड़ा-दौड़ा आया। आते ही नौकर को डाँटा कि आग कैसे लग गई। लोगों ने कहा- जैसे भी लगी, लग गई, अब अपने सामान को तो बचाओ, सेठ जलती हुई आग के भीतर गया और जो सामान उसके हाथ में आया, बाहर ले आया। मकान जलते-



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जलते गिरने को आ गया, तभी सेठ को ख्याल आया– अरे, मेरा छोटा बेटा। उसने लोगों से पूछा मेरा छोटा बेटा घर में सोया था, वह बाहर आया कि नहीं। लोगों ने कहा– वह तो भीतर ही रह गया।

माल तो सब बच गया पर मालिक ही जल गया। बताइए मालिक के जल जाने पर बचे हुए माल का क्या मूल्य? हमारे होने से सारी अर्थवत्ता है।

मालकियत मूल्यवान है। क्या खोया, क्या पाया यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। मालकियत का बने रहना खोने-पाने से ऊपर है। आप दान दें, खूब प्रभावना करें, पर नामों की घोषणा न करवाएँ। देने में आनन्द आता है, दे जाओ, नाम के लिए कुछ मत करो। नाम एक तरह की प्रवंचना है। दो; अपरिग्रह-भाव से दो, इसलिए दो कि तुम्हारे पास आवश्यकता से अधिक है। आवश्यकता से अधिक नहीं है, तो देने की बिल्कुल जरूरत नहीं है।

जीसस अपने शिष्यों से बहुधा एक कहानी कहा करते थे कि एक सेठ था। सेठ ने सुना कि आज बहुत तेज वर्षा होने वाली है, खेतों की फसल आज ही न काटी गई, तो सारी फसल नष्ट हो जाएगी। उसने एक साथ पचास नौकर रखे ताकि आज ही सारी फसल कट जाए। दोपहर हो गई फसल बहुत थी। उसने दोपहर में पचास नौकर और लगा दिए फिर भी पूरी फसल न कट पाई। साँझ होने को आ गई। मालूम हुआ कि सौ लोग फसल न काट पाएँगे। दूसरे खेतों से निवृत्त हुए सभी मजदूरों को बुलाकर कटाई में लगा दिया। शाम होते-होते सारी फसल कट गई। जब मेहनताना देने का समय आया तो उसने सबको एक समान पैसा दिया। यह देखकर जो सुबह से काम करने आए थे, वे आग बबूला हो उठे। क्रोध में आकर बोले-'हम सुबह से काम कर रहे हैं और हमें दस ही रुपये और ये जो शाम को पाँच बजे काम करने आए, उन्हें भी दस रुपये, यह अन्याय है।'

सेठ ने कहा, 'तुम्हारी बात तर्क-संगत है, लेकिन मुझे एक बात बताओ मैंने तुम्हें कितने रुपये मेहनताने पर रखा था?'

मज़दूरों ने कहा, 'सात रुपये।'

और मैंने तुम्हें दिया कितना है– सेठ ने पूछा।

उत्तर आया, 'दस रुपये।'

सेठ बोला, मैंने तुम लोगों को सात रुपये की दिहाड़ी पर रखा था और दिये दस रुपये, फिर शिकायत क्यों कर रहे हो? मैं दूसरों को कितना भी दूँ, इससे तुम्हें क्या मतलब? मैं दे रहा हूँ क्योंकि मेरे पास है, ज़रूरत से बहुत ज्यादा है। देने में मुझे आनन्द आता है। देना ही मेरा स्वभाव है। देने में तृप्ति आती है। देना ही मेरा सुख है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीसस की कहानी के माध्यम से कहना चाहूँगा कि देने में आनन्द आता है, तो जरूर दो। लोभ अन्तहीन है, इसलिए लुटाओ। इस दुख-बहुल संसार में यह वह कर्म है, जो हमें दुर्गति से बचाता है। देने वाला व्यक्ति ही हृदय से विशाल है, वही प्रेम के योग्य है। जीवन में ऐसा व्यक्ति मिल जाए, तो उससे मैत्री करना। वह आपके भी जीवन को दुर्गति से बचाने वाला कल्याणमित्र सिद्ध होगा।

हमेशा हाय पैसा, हाय पैसा की पागल प्रतिस्पर्धा में शामिल न हों। उतना कमाएँ जितना आप उपभोग कर सकते हैं। समाज में प्रतिष्ठा अर्जित करने के लिए इतना धन न कमाएँ, जो व्यर्थ लॉकर में पड़ा रहे, चोर और आयकर वालों का ख़तरा बनकर हमें तनावग्रस्त करे। ऐसी प्रतिष्ठा झूठी प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा ही अर्जित करनी है, तो अपने गुणों को विकसित करो। अपने कर्म से, अपने स्वभाव से प्रतिष्ठा अर्जित करो। यह प्रतिष्ठा स्थाई होती है।

पैसे की प्रतियोगिता से बचें और जो समय बचता है, वह बचा हुआ समय अपने परिवार पर, मित्रों पर, धर्म पर खर्च करें। पत्नी, माता-पिता, बच्चों के साथ खेलें, बच्चों को पढ़ाएँ, उन्हें संस्कारित करें, उनसे आत्मीय निकटता बढ़ाएँ। उनकी भावनाओं का आदर करें। इसके प्रतिफल में आपको उनसे अधिक आदर, प्यार और अपनत्व मिलेगा।

जीवन को वस्तुओं से नहीं, व्यक्तित्व से आपूरित करो। न कंजूसी अच्छी और न ही तामझाम। स्वच्छ रहो, स्वस्थ रहो। सद्विचार अपनाओ। औरों का सहयोग करो। यह एक जीवंत प्रभावना है। स्वयं के लिए भी और औरों के लिए भी। तनावरहित निश्चिंत जीवन जीओ। मुक्ति के पंख खोलो। नक्षत्रों से, तारों-सितारों से हमें मुक्ति का निमन्त्रण है। निर्लोभी मन मुक्ति की ही उड़ान है। लोभ का दलदल गहरा है, कब्ज़ पुराना है, हे मनुष्य! मर्त्य से ऊपर उठो, हे कमल! पंक से ऊपर उठो। यही है पहल ऊर्ध्वारोहण की, मुक्ति की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# समय का करें सार्थक उपयोग

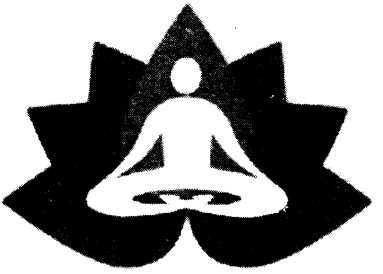

दुनिया में दो प्रकार की स्थितियाँ हैं - शीत-ऊष्ण, उदय-अस्त, रात-दिन, सुख-दुख, संयोग-वियोग, जन्म-मृत्यु- ये सभी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनके अतिरिक्त कोई स्थिति नजर आती है, तो वह मन की आँखों का भ्रम है। सिर्फ़ दो ही स्थितियाँ हैं। प्रकाश के अभाव का नाम अंधकार है। किसी तत्त्व से ऊष्णता समाप्त होगी, वह तत्त्व स्वत: शीतल हो जाएगा। यह जीवन और दुनिया की तासीर है।

सूर्य उदय के साथ ही पश्चिम की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देता है। सूर्य चलता हुआ न भी दिखाई दे, लेकिन पश्चिम की ओर ही अग्रसर होता है। सूर्य ने उदय के बाद कभी पूर्व की यात्रा नहीं की, पश्चिम की यात्रा की है; फिर वह भले ही पश्चिम से पूर्व में आ जाए। जो जन्म लेता है उसके जीवन में अनिवार्यत: मृत्यु घटित होती है। मृत्यु जीवन का उपसंहार और जन्म जीवन की भूमिका है।

मृत्यु दिखाई नहीं देती, केवल प्रतिभासित होती है। जैसे अंधकार में अट्टहास करने वाले व्यक्ति को देखा नहीं जा सकता, केवल उसके अट्टहास की ध्वनि सुनाई पड़ती है, ऐसे ही मृत्यु को देखा नहीं जा सकता। जीवन मृत्यु का छोटा-सा अंश है। जैसे बादल बिजली की चमक में थोड़े से समय के लिए प्रतिभासित होते हैं, ऐसे ही जीवन है। कुछ क्षणों के लिए रहता है और फिर मृत्यु में विलीन हो जाता है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य अपने जीवन में जीने का प्रबंध कम और मृत्यु से बचने के उपाय अधिक करता है। यदि जीवन के उपयोग का इन्तज़ाम हो जाए, तो मृत्यु व्यक्ति के लिए जीवन की मृत्यु न रह कर जीवन का आखिरी पड़ाव बन जाती है। मनुष्य जीवन में हर वस्तु से बच सकता है, आँखों में धूल झौंक सकता है, लेकिन मृत्यु से कभी नहीं बच सकता। जीवन है तो मृत्यु भी है। जीवन का पहला और अंतिम सत्य तो मृत्यु ही है। वह निश्चित है। फिर घबराना कैसा! सिर्फ मृत्यु ही होगी न्। जीवन के किसी भी मार्ग से गुजर जाएँ, परिणाम क्या होगा? मृत्यु ही न्! फिर क्यों न निश्चिन्त होकर, निर्भय होकर जीवन जीएँ!

महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन अपने परिजनों के मोह से व्याकुल हो, अपना गाण्डीव-धनुष रथ में रख देता है, उस समय श्रीकृष्ण उससे सिर्फ़ एक ही बात कहते हैं कि पार्थ, अपने हृदय में नपुंसकता को स्थान मत दो। अपने हृदय की तुच्छ दुर्बलता का त्याग करो। उठो, और युद्ध में रत हो जाओ। आख़िरी परिणाम उनकी और तुम्हारी मृत्यु ही है। तुम मृत्यु से क्यों भयभीत होते हो? यह न सोचो कि कोई मर रहा है, ये तो मारे ही जा चुके हैं। व्यक्ति अपने को चाहे जितना बचाना चाहे लेकिन जीवन की धारा प्रवाहमान है, जो रुकती नहीं है। धारा के रुकने का नाम ही मृत्यु है। जलते हुए दीप को ही हम दीप कहेंगे। बुझा हुआ दीप तो दीप की लाश है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह जीवन का उपभोग/उपयोग करना चाहता है लेकिन मृत्यु से बचकर। जीवन का भोग कर लेने के बाद भी कौन बंधनों से मुक्त हो पाया है, तृष्णा को तृप्त कर निर्ग्रन्थ हो पाया है? तुमने ययाति की कहानी तो सुनी ही होगी, जिसके द्वार पर मृत्यु दस्तक देती है और अपनी कामनाओं से अतृप्त ययाति सौ वर्ष का जीवनदान माँगता है। मृत्यु उसके पुत्र की कीमत पर सौ वर्ष का जीवन देती है। अगले सौ वर्ष व्यतीत होने पर यमदूत पुनः आते हैं, लेकिन ययाति! वह तो सोचता है मैंने तो कुछ भोगा ही नहीं और पुनः सौ वर्ष जीवन माँगता है। उसके पुत्र उससे ज्यादा समझदार हैं। वे पिता की एषणा और मृत्यु का खेल देखते हैं। मृत्यु जो अवश्यम्भावी है फिर भी पिता जीवन की कामना किए चले जाते हैं, अपने पुत्रों की भेंट देते हुए। हजार वर्ष का जीवन जी लिया फिर भी तृष्णाएँ तृप्त न हो सकीं। अन्ततः यमराज स्वयं आए और कहा - बस, अब और नहीं। तुम जिस जाल में उलझे हो, वहाँ कभी तृप्त न हो सकोगे। अपने कितने ही पुत्रों की बलि चढ़ाओ, लेकिन तब भी अपनी तृष्णा को भर न पाओगे। तृष्णा दुष्पूर है। उम्र से तृप्ति नहीं होती, लेकिन जब जीवन-का-बोध उपलब्ध होता है, तो वही व्यक्ति परितृप्त हो जाता है, वही शांत हो जाता है, वही आत्म-मौन को उपलब्ध हो जाता है।

अनेक बार मनुष्य के मन में विचार आता है कि गृहस्थी में बहुत झंझट हैं, क्यों



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न दीक्षा ग्रहण कर संन्यासी बन जाएँ। लेकिन व्यक्ति अपनी ही मोहभरी रागात्मक जंजीरों से जकड़ा है कि चाहकर भी अलग नहीं हो पाता। व्यामोह की गाँठ इतनी प्रबल है कि परिवार वाले नहीं, हम खुद ही उनसे बँधे रहते हैं। हम ही संसार का निर्माण करते हैं और उससे आबद्ध होते हैं। हमारा निर्माण अवश्य ही परमात्मा ने किया है, लेकिन हम जिस संसार में उलझते हैं, उसके निर्माता हम स्वयं ही हैं। परमात्मा हमें जन्म देता है, जीवन का पुरस्कार देता है लेकिन संसार में उलझने का कार्य परमात्मा ने हमें नहीं सौंपा है। आपके पास हजारों समस्याएँ हैं, लेकिन मेरे पास कोई समस्या नहीं है। कोई मुझसे पूछे कि क्या मेरे मन में विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठते हैं, जिनका उत्तर पाने के लिए किसी गुरु की तलाश है, तो मै कहूँगा कि मेरे मन में प्रश्न ही नहीं उठते। मेरी समस्या यह है कि मेरे पास कोई समस्या नहीं है।

आप कहें, तो मैं आपसे प्रश्न पूछूँगा, लेकिन उसका उत्तर मुझे नहीं चाहिए। वह जवाब भी आप ही के लिए है, आपकी आत्मा को वह उत्तर चाहिए। शांति से रात्रि में मेरा यह प्रश्न सोचिएगा कि मनुष्य अन्ततः रुकता कहाँ है, उसका धैर्य कहाँ अटकता है– यह सोचिएगा। हम सोचते जरूर हैं कि हम बहुत धैर्यवान हैं लेकिन आपके ऊपर छिपकली गिर जाए तो एकदम से चौंक पड़ते हैं, धैर्य न जाने कहाँ विलुप्त हो जाता है।

जब हम सामायिक की साधना करते हैं तब इतना असीम धैर्य होना चाहिए कि उस समय बिच्छू भी चढ़ने लगे तो विचलित न हो पाएँ। साँप भी गुजर जाए, तो तुम दौड़ न पाओ। जिनमें धैर्य होता है, उन्हें साँप या बिच्छू नहीं काटते। साँप और बिच्छू अधीर होने वालों को, विचलित हो जाने वालों को ही काटते हैं। एक प्रयोग करें– आप किसी गली से गुजर रहे हैं और कोई कुत्ता भौंकने लगे, आप वहाँ शांत-स्थिर होकर खड़े हो जाइए, कुत्ता चुप हो जाएगा। लेकिन जैसे ही अधीर-विचलित होकर दौड़ने लगे, कुत्ता भी दुगुनी रफ्तार से आपके पीछे दौड़ेगा। भय का भूत पिछलग्गू ही होता है।

व्यक्ति स्वयं ही अपने संसार का निर्माण कर उसे समस्याओं और उलझनों से भर लेता है। मेरे प्रश्न पर विचार कीजिएगा कि व्यक्ति रुकता कहाँ है? यह जीवन का गहन-गम्भीर सवाल है। जो उत्तर आए, उन्हें किनारे कर देना क्योंकि ये रटे-रटाये उत्तर हैं। तुम्हारे जीवन को बदलकर रख देगा यह प्रश्न, चित्त में रूपान्तरण होगा, हृदय बदलेगा– सतत एक ही प्रश्न-बोध कि आदमी रुकता कहाँ है? संसार का निर्माण कर जंजीरें बाँध लेता है। पाँव में जंजीरें हैं नहीं, पर जंजीरों का बोझ बहुत अधिक है। किसी नौका के लंगर में बँधे नहीं हैं पर दृष्टि-भ्रम है कि मेरे लंगर बंधे हुए हैं। अब नौका कैसे चलेगी? नौका तो चलने को तैयार है, बशर्ते हम ही अपनी



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पतवारों को खेने का इन्तजाम करें।

मैंने सुना है कि एक युवक प्रतिदिन संत के पास जाता था। एक दिन उसने कहा, 'मेरी बहुत इच्छा होती है कि मैं भी फकीरी धारण कर लूँ, संन्यस्त हो जाऊँ।'

संत बोले, 'सोचने से क्या होगा कर के दिखा दो, हो जाएगा।'

युवक ने कहा, 'आप तो कहते हैं, हो जाओ। मैंने भी अपने घर में बात की लेकिन कोई तैयार ही नहीं होता। मैंने अपने भाइयों से,पत्नी से, माता-पिता सभी से कहा कि मैं अपने जीवन को बन्धनों से मुक्त करना चाहता हूँ पर कोई अनुमति ही नहीं देता।'

अब रजा क्या माँगने से मिलती है! निकल पड़ो, अपने आप रजा ही है। संत ने कहा, 'ठीक है, लेकिन अच्छी तरह सोच लो कि क्या वास्तव में तुम इस जीवन में आना चाहते हो। घर वालों का इन्तज़ाम हो जाएगा। वे तो अनुमति दे देंगे, लेकिन बाद में तुम बिदक गए तो?

'मैं तैयार हूँ'। युवक ने कहा

संत ने उसे श्वास रोकने की प्रक्रिया बताई। वह घर पहुँचा और प्रक्रिया के अनुसार साँस रोककर जमीन पर गिर गया। घर में कोहराम मच गया कि जवान बेटा मर गया। मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। जबरदस्त भीड़ हो गई। उस भीड़ में वह संत भी पहुँच गया। पिता रो रहा था कि हे भगवान, तुमने मेरे जवान बेटे को उठा लिया, इससे तो अच्छा होता कि मुझे ही उठा लेता। बेटा मर जाता है तो माँ भी यही कहती है। यह दूसरी बात है कि उठने की इच्छा किसी की नहीं है, कोई उठना नहीं चाहता, मगर कहते हैं। आँसू नहीं आते तब भी रोना-चिल्लाना दिखलाते हैं। जिसे देखो वह क्रंदन कर रहा था कि हे भगवान, यह तुमने क्या कर दिया।

संत आगे आया। उसने कहा- यह रोना बंद करो और मेरी बात सुनो। इसकी अर्थी बाद में उठाना। यह जो तुम कह रहे हो कि इसके बदले तुम मरने को तैयार हो, तो मैं इसे जीवित करने की प्रक्रिया जानता हूँ, तुम्हारे बेटे को जिंदा किया जा सकता है बशर्ते इसके बदले तुम्हारे परिवार में से कोई मरने को तैयार हो।

सब रोना-पीटना भूल गए और एक-दूसरे की बगलें झाँकने लगे। संत ने पिता से कहा- तुम तो इसके बिना नहीं रह सकते न्, तुम तो इसके लिए स्वयं मरना चाहते थे न्, अब तुम मर ही जाओ। पिता ने कहा- मेरे कोई एक ही बेटा नहीं है, चार अन्य भी हैं। मेरा काम चल जाएगा। माँ, भाई, पत्नी, सभी ने कुछ-न-कुछ बहाना बना लिया। मित्र, परिजन भी किनारा कर गए, कोई भी मरने को तैयार न हुआ।

मरने वाले के पीछे कोई भी मरने को तैयार नहीं होता। घरवाले, मित्र, परिजन



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभी श्मशान तक ही साथ निभाते हैं, साथ कोई नहीं जाता। हमारे अपने ही, शव को अग्नि को समर्पित कर देते हैं।

संत ने युवक का सिर थपथपाया और कहा– बेटे खड़े हो जाओ और युवक तत्काल खड़ा हो गया। संत ने पूछा– अब बताओ, तुम्हारा क्या विचार है। घर वालों ने अनुमति दे दी। घर वालों का तुम्हारे बिना काम चल सकता है। अब तुम बताओ घर वालों के बिना तुम्हारा काम चल सकता है? और वह युवक संत के साथ चला गया।

आज की परिस्थितियों में यह प्रसंग पुनः उपस्थित हो जाए, तो मैं नहीं जानता कि आप क्या करेंगे। जरूर ही दुविधा में फँस जाएँगे। एक मन तो संसार में खींचेगा, दूसरा संन्यास में बुलाएगा। और वह क्षण अप्रतिम होगा जब संसार में ही संन्यास घटित हो जाएगा। परमात्मा का प्रसाद होगा वह, जब कोई आत्मबोध को उपलब्ध होगा। ठोकर खाई और जाग गया, सम्यक्त्व को, सम्बोधि को उपलब्ध हुआ। जीवन के बन्धनों के प्रति हमारे व्यामोह को कम करने के लिए ही यह सूत्र है–

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए।

महावीर ने अपने प्रिय शिष्यों को जो प्रमुख उद्‌बोधन दिए, उनमें से एक यह उद्‌बोधन है। गौतम तो सिर्फ़ एक माध्यम है। उनके लिए लाखों–लाख गौतम है; हम और आप भी उनके लिए गौतम ही हैं, जिनके लिए वे अपनी वाणी से अमृत वर्षा करते हैं। आप स्वयं को महावीर का गणधर मान सको, गौतम समझ सको तो यह गाथा आपके लिए एक बड़ा चमत्कार हो सकती है। अगर यह समझा कि महावीर ने यह बात आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व सिर्फ़ गौतम के लिए कही थी, तब तो यह गाथा हमारे कुछ काम न आएगी। स्वयं को महावीर का गौतम ही मानो, ताकि महावीर का सामीप्य और सान्निध्य मिल सके। स्वयं क़ो पच्चीस सौ वर्ष पूर्व महावीर के सभामंडप में ले चलो और महावीर के चरण छूकर कहो, प्रभु मैं आपके चरणों में हूँ, मेरे लिए क्या संदेश है। तब महावीर यह बात कहेंगे, 'जैसे समय बीतने पर वृक्ष का सूखा हुआ पत्ता गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। अतः गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो।'

जैसे समय बीतने पर वृक्ष का सूखा हुआ पत्ता गिर जाता है वैसे ही क्या मनुष्य का जीवन भी नहीं गिर जाता? क्या मनुष्य के साथ भी ऐसा ही नहीं होता? और जो लोग वृद्ध हो चुके हैं, वे तो कम से कम यह जान ही लें कि जीवन के वृक्ष पर उनका पत्ता पीला पड़ चुका है और वह किसी भी क्षण भूमिसात् हो सकता है। हवा का हल्का–सा झोंका भी पत्ते को धराशायी कर देगा। जीवन बिल्कुल पेड़ के पत्ते की



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह है, जब तक हरा है, तब तक पेड़ पर है और जब पीला पड़ गया, सूख ही गया तब उसकी आयु का क्या भरोसा। इसीलिए महावीर कहते हैं, प्रिय वत्स, तुम समय मात्र के लिए, क्षण भर का भी प्रमाद मत करो।

प्रमाद अर्थात् मूर्च्छा, सुस्ती, सोयापन, गहरी तन्द्रा, गहरी नींद, एक सम्मोहित अवस्था। व्यक्ति की तन्द्रा, मूर्च्छा इतनी गहरी है कि उसे समय का भी बोध नहीं रहता। समय की चिन्ता नहीं रहती। वह समझता है कि समय का तो कोई मूल्य ही नहीं है। कोई आपसे मिलने का समय निर्धारित करता है, आप प्रतीक्षा करते हैं, लेकिन उसे तो समय पर आना ही नहीं है। लोग मानकर ही चलते हैं कि चार बजे का कार्यक्रम है तो तीन बजे का समय दो। लोगों के लिए समय का कोई मूल्य नहीं है। निरर्थक वार्तालाप, बहसबाजी में लोग न जाने कितना समय गँवा देते हैं, उसका तो कोई हिसाब ही नहीं है। समय का मूल्य होना चाहिए। समय का अनुशासन और पाबंदी तो होनी ही चाहिए।

जो व्यक्ति समय का पाबन्द नहीं है, उसके जीवन में सुव्यवस्था नहीं होती। वह किसी सिद्धान्त का पाबन्द नहीं होता। जब तुम समय के अनुशासन में ही नहीं हो, तो अपने क्रोध, काम, वासना, मोह, माया, कषाय पर कैसे विजय पाओगे। तुम समय को नहीं निभाते, तो समय तुम्हारा साथ कैसे निभा पाएगा!

समय की बड़ी कीमत है। हर क्षण मूल्यवान है, क्योंकि पता नहीं वृक्ष का सूखा पत्ता किस क्षण गिर जाए। हम सोचते हैं कि कल करेंगे, पर किसे पता है कि आने वाला क्षण हमारे लिए काल हो जाए। जो आज को कल पर टालता है यह मत सोचिए कि वह कल करेगा। कल को फिर कल पर टाल देगा। जिंदगी कल पर टलती चली जाती है और कल कभी आता ही नहीं। जो आता है, वह वर्तमान होता है। उस कल का कुछ पता ही नहीं जिसके लिए तुम आज को नष्ट कर रहे हो। कल कभी नहीं होता, जो होता है, वह आज और इसी समय होता है।

तुम्हारा यह कल कब काल बन जाए कुछ पता नहीं। जो पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते उनके लिए तो जीवन बहुत छोटा है, थोड़ा है। इसलिए जितना अधिक किया जा सके, जीवन का उपयोग कर लो, चाहे सार्थक या निरर्थक। क्योंकि दो ही उपयोग हो सकते हैं और यह हम पर ही निर्भर है कि हम जीवन की चेतना का कैसा उपयोग करते हैं। समय तो निरन्तर बह रहा है। बहती गंगा में जितने चुल्लू पानी पी लिया जाए, उतना ही अपना है; शेष तो जाएगा ही।

कल के लिए मत सोचो। अपने कार्यों को, अपने जीवन को, अपनी जवाबदारियों को कल पर मत टालो।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करैगौ कब।।

जिसके लिए जीवन का मूल्य है, वह सोचता है कहाँ कल पर टालूँ, आज का काम क्यों न आज ही कर लूँ और जो कल पर टालता है वह सोचता है, इतनी भी क्या जल्दी है, अभी तो बरसों जीना है, कभी-न-कभी कर ही लेंगे। नहीं! ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें अपनी ओर से जीवन की पूरी तैयारी रखनी चाहिए। अगर हम निद्रामग्न हैं और मृत्यु आ जाए, तो हमारी ओर से पूरी तैयारी प्रतीत होनी चाहिए। साल भर प्रतीक्षा मत करो कि कब संवत्सरी आएगी और कब क्षमापना करोगे। हर दिन हमारे लिए संवत्सरी है। संवत्सरी का अर्थ ही होता है नया वर्ष। आपके लिए तीन सौ पैंसठ दिन में नया वर्ष आता है पर मेरे लिए हर चौबीस घंटों में नया वर्ष आ जाता है। एक दिन और एक रात यानी वर्तुल पूरा हो गया। इस तरह हर अगली सुबह नया साल ही है। हर दिन को धन्यता, जीवंतता, प्रसन्नता और सजगता से जीओ कि वह दिन ही संवत्सरी बन जाए। हम नहीं जानते कि आने वाले कल में हमारी मृत्यु होगी या जीवन रहेगा। लेकिन हमारी ओर से इतनी तैयारी होनी चाहिए कि हमारी मृत्यु भी निर्वाण का महोत्सव बन जाए। कल क्या होगा पता नहीं लेकिन आज तो उत्सव हो ही जाए।

मनुष्य हमेशा अच्छे कार्यों को कल पर टालता है और बुरे कार्य तो आज ही कर डालता है। मैं उलटा सूत्र दूँगा। मैं कहूँगा अच्छे कार्य को आज कर डालो और बुरे कार्यों को सदा कल पर टालो। अच्छा काम करना हो, तो तुम मुहूर्त्त दिखाते हो। किसी पंडित, किसी साधु के पास जाते हो कि मुझे अमुक कार्य करना है, शुभ मुहूर्त निकाल दीजिए। लेकिन मैं कहता हूँ जिस क्षण शुभ कार्य करने का विचार उठे, संकल्प जगे, वही समय, वही क्षण सबसे श्रेष्ठ व शुभ मुहूर्त्त है।

किसी से दुश्मनी निकालनी हो, क्रोध करना हो, तब किसी राज-ज्योतिष के पास जाना और कहना- मुझे अमुक व्यक्ति से बदला लेना है या उसने मुझे अपशब्द कहे थे, उस पर क्रोध करना है, कोई अच्छा-सा मुहूर्त निकाल दीजिए। लेकिन कहीं ऐसा होता है? क्रोध तो अभी करोगे और क्षमा माँगनी हो, तो संवत्सरी की प्रतीक्षा करोगे। क्रोध को किसी संवत्सरी पर टालो और क्षमा माँगनी हो, तो आज इसी समय, तत्क्षण क्षमापना कर लो। अशुभ कार्य कल पर टालो और शुभ कार्य आज ही कर डालो। जीवन का इससे सुन्दर अन्य कोई सूत्र नहीं है। अपने जीवन को निद्रा से, पाप से, प्रमाद से बचाने के लिए इससे अच्छी दवा नहीं है। जीवन आज होगा, मृत्यु कल होगी। प्रेम आज होगा, क्षमा आज होगी, करुणा-मैत्री आज होगी। कोई अपना दुश्मन है, तो दुश्मनी भी निकालेंगे, पर आज नहीं फिर कभी। क्रोध भी करेंगे पर



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ा समय बीतने के बाद। अभी क्या जल्दी है कल-परसो कभी भी कर लेंगे क्रोध।

कल-परसों आने पर आप क्रोध न कर सकेंगे। क्योंकि तब तक क्रोध ठंडा हो चुका होगा। इसलिए जब भी क्रोध आए, उससे उबरने के लिए कल पर टाल दो। बेटे ने गलती की है, उसे डाँटेंगे जरूर लेकिन चार घंटे बाद। अभी तुरंत प्रतिक्रिया नहीं। हाँ! बेटा अच्छा कार्य करता है, तो उसकी प्रशंसा तुरंत अभी करेंगे। प्रेम करना है, अभी ही करेंगे। डाँटना है, पीटना है, तो क्या जल्दी है कल कर लेंगे। क्यों आज मारना, रहने दो, टालते जाओ।

अशुभ कार्य के लिए कोई मुहूर्त्त तलाशो। क्रोध करना है तो मेरे पास आ जाना। पुष्य नक्षत्र में अमृत सिद्धि योग का अच्छा-सा मुहूर्त्त निकाल दूँगा। और जब प्रेम करने की बात आ जाए, भले ही अकाल योग हो, ज्वालामुखी योग या यमघंट योग ही क्यों न हो,उसकी बिना परवाह किए ही प्रेम कर लेना। समय का सदुपयोग करने का यह अमृत सूत्र है। जब महावीर कहते हैं कि समय का क्षण भर भी प्रमाद मत करो, तो वे यही कहते हैं कि हर क्षण का सदुपयोग करो। जीवन को जीवंतता से, सजगता से जीओ। मेरा भी यही निवेदन है कि हम हर दिन को महोत्सव बनाकर जीएँ।

हमारा हर दिन इतने आनन्द से परिपूर्ण हो कि हम आज को तथागत होकर जीएँ। चौदह वर्ष की साधना से प्रभु को कैवल्य प्राप्त हुआ लेकिन हम तो आज ही इतनी परिपूर्णता से जीएँ, इतनी जागरूकता से जीएँ कि हमारे लिए देह का गिरना, बस देह का गिरना भर हो।

जीवन और समय का गहरा संबंध है। वर्षों पूर्व एक समय-घड़ी हुआ करती थी काँच की शीशी की, जिसमें एक घड़ी तक बालू रेत ऊपर से नीचे गिरती, शीशी पलट दो फिर ऊपर से नीचे आने लगती। जीवन बिल्कुल समय की घड़ी समझो। जैसे एक-एक कण गिरता चला जा रहा है। अगर सारे रेत के कण गिर गए, फिर घड़ी में क्या बचा? जीवन में से समय ऐसे ही फिसलता चला जा रहा है। सोचो, बाद में फिर क्या बचेगा? केवल एक खाली बोतल हमारे हाथ में रह जाएगी, घड़ी और समय दोनों निकल जाएँगे। महावीर तो एक-एक क्षण को मूल्य दे रहे हैं।

हमारे लिए दिनों का, घंटों का भी मूल्य नहीं है, पर महावीर के लिए क्षण-क्षण का मूल्य है। जब देवेन्द्र महावीर के पास आते हैं और कहते हैं कि प्रभु आप अपनी मृत्यु का समय कुछ आगे बढ़ा लीजिए ताकि राहु-काल, जो आपकी मृत्यु वेला में बैठ रहा है, बचा जा सके। आपका शासन बचाया जा सके। महावीर कहते हैं - नहीं, इससे बचा नहीं जा सकता, इसे टाला भी नहीं जा सकता। यह मृत्यु निर्धारित है और



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो निर्धारित है वह होगी। समय, समय है।

अगर अभी अवसर चूक गए, तो असंख्यात काल तक पड़े रहना होगा। जो समय बीत गया वह कभी वापस लौटकर नहीं आता। और जब अवसर चूक गए, तो पछताने से भी क्या होता है? पछताता कौन है? जिन्हें समय की चेतना नहीं है, जिन्हें समय की सही समझ नहीं है वे ही लोग पछताते हैं। जो समय का बोध रखकर जीवन यापन करते हैं उन्हें कभी प्रायश्चित नहीं करना पड़ता। समय के एक क्षण में बादल से पानी की बूँद भूमि पर गिर कर मिट्टी में मिल जाती है, वही पानी की बूँद गर्म तवे पर गिरे, तो जल जाएगी, केले के पेड़ के गर्भ में गिरे तो कपूर बन जाएगी, सर्प के मुँह में विष बन जाएगी और वही सीप में जाकर मोती। पानी की बूँद तो वही एक है, समय सभी के लिए एक समान आ रहा है, हम उसका कैसा, क्या उपयोग करते हैं, यह हमारी पात्रता पर निर्भर है।

यदि हम समय का पूर्ण उपयोग करने के लिए सतर्क हैं, सचेष्ट हैं तो समय की बूँद न ज़हर बनेगी और न समाप्त होगी। उसे अनिवार्यत: मोती बनना होगा। चाहे हमारे चारों ओर कांटों की बाड़ लगती रहे, हम तो उन कांटों में फूल की तरह खिलते रहेंगे, महकते रहेंगे।

मुझे याद है: किसी एक भिखारी ने पूरे नगर में भीख माँगी। लेकिन संयोग! उसे नगर में कहीं से भी भीख न मिली। रहा होगा भिखारियों का ही शहर, फिर भीख कहाँ से मिलती। तीन दिन से भूखा वह बहुत उदास हो गया। संध्या के समय घर लौटने लगा। रास्ते में उसे एक अन्य भिखारी मिला। उसने उदासी का कारण पूछा। कारण सुनकर वह बोला– चिन्ता न करो। मेरे पास दो मुट्ठी चावल है, एक मुट्ठी तुम ले जाओ। थोड़ा तुम्हारा भी पेट भर जाएगा।

एक मुट्ठी चावल देकर वह आगे बढ़ा ही था कि सामने से बहुत बड़ा जुलूस आता दिखाई दिया। रथ, घोड़े, हाथी चल रहे थे। उसने देखा यह तो नगर के राजा की सवारी है। स्वयं महाराजा इस रास्ते से गुजर रहे हैं। मन में संकल्प किया कि राजा के चरण पकड़ लूँगा और कहूँगा कि इस भिखारी की दरिद्रता दूर कर दें। जुलूस बहुत निकट आ गया, पर भिखारी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि राजा के रथ के पास कैसे जाए। संयोग या ताज्जुब, राजा ने अपना रथ रुकवा दिया और उतर कर भिखारी की ओर बढ़ने लगा। भिखारी के पास पहुँचकर उसके पाँवों में गिर गया और कहने लगा– भिखारी, मैं तुमसे कुछ पाना चाहता हूँ, मुझे खाली हाथ मत लौटाना। यह कहकर सम्राट ने अपना हाथ भिखारी की ओर बढ़ा दिया।

भिखारी को मन में बड़ा गुस्सा आया। उसे लगा कि अगर उसके पास कुछ



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता तो क्या वह इस दशा में पड़ा होता। वह तो सोचता था कि राजा से याचना करके आज उसकी दरिद्रता मिट जाएगी, पर यहाँ तो एक भिखारी और खड़ा हो गया। दिखाई तो सम्राट देता है लेकिन खुद ही माँग रहा है। अब जब सम्राट ही माँग रहा है तो भय के कारण इच्छा न हो, तो भी देना ही पड़ेगा। उसने थैली में हाथ डाला और बहुत कंजूसी के साथ चावल की एक चिपटी काँपते हुए हाथों से निकालकर सम्राट को दे दी। सम्राट उसे धन्यवाद देता हुआ चला गया।

भिखारी बहुत क्रोध में था। कहने लगा– कैसा भिखारियों का नगर है, जहाँ का राजा भी भिखमंगा। और इसी कषाय-भाव से घर पहुँचकर उसने अपनी पत्नी को सारी आप बीती सुनाई। पत्नी ने कहा– अब क्यों इतना गुस्सा होते हो। एक चिपटी चावल चला भी गया तो क्या फ़र्क़ पड़ने वाला है। लाओ जो चावल हैं उन्हें चुन-बीनकर ही बना लेती हूँ। ऐसा कहकर जैसे ही उसने थैली को पलटा, ताज्जुब से देखा– उन चावलों में कुछ दाने सोने की तरह चमक रहे थे। वह दौड़कर पति के पास पहुँची और बोली जाओ, तुरंत जाओ और सम्राट से कहो कि वह सभी चावल ले ले।

भिखारी ने कहा– अफ़सोस, अब कुछ नहीं हो सकता। जब अवसर आया मैं चूक गया। भाव सिर्फ़ लेने के रहे, देने के भाव आ जाते, तो सारे-के-सारे चावल सोने के हो जाते। अवसर चूक गए, तो बाद में सिर्फ़ चावल ही रह जाते हैं।

हमारा जीवन भी हमारे लिए अवसर है। इसका अधिकतम उपयोग कर लें। कब कौन-सा क्षण जीवन को सुवर्णमय बना दे, रूपान्तरित कर दे, कौन जाने। यह तो प्रवाहमान जल है, चुल्लू भर पीयो कि लोटा भर इकट्ठा करो, आपका है। न भी पीया तो कोई नुकसान नहीं है। यह तो बहती गंगा है, आगे ही बढ़ती जाएगी। अवसर है, समय है, उसका उपयोग हो ही जाना चाहिए। नहीं तो जीवन का पत्ता पीला होते ही वृक्ष से कब झड़ जाए, पता नहीं है। जीवन कब समाप्त हो जाए खबर नहीं। कब चिर निद्राधीन हो जाए, कहा नहीं जा सकता, इसीलिए यह आह्वान है कि समय का प्रमाद मत करो। तुम जिस सागर में चल रहे हो, उसमें कब ज्वार आ जाए और तुम्हारी जीवन-नौका डुबो दे। समय आज है, आज पर विश्वास करें। वर्तमान के द्रष्टा बनो और जीवन पूरी जीवंतता, निर्मलता तथा सजगता के साथ जीओ। प्रभु की यही कामना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# जीवन का करें काया-कल्प

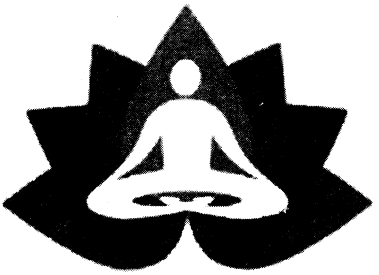

बहुत पुरानी घटना है - हरिकेशबल नामक एक आध्यात्मिक संत हुआ। संत वाराणसी के गंगा तट पर ध्यानमग्न था। तभी वहाँ की राजकुमारी अपनी सहेलियों के साथ गंगा किनारे रमण करने आई। उसे पता चला कि वृक्ष के नीचे साधनारत वह संत चाण्डाल-जाति का है। राजकुमारी को उससे वितृष्णा हुई, घृणा हुई कि चाण्डाल जाति का व्यक्ति तपस्या करे। उपेक्षा से भरकर उसने संत के मुँह पर थूक दिया।

संत की सेवा में यक्ष व किन्नर रहते थे। उन्हें राजकुमारी का यह अभिमान से भरा संत का अपमान सहन न हुआ। यक्ष के प्रभाव से राजकुमारी अस्वस्थ रहने लगी। उसे खून की उल्टियाँ होने लगीं। वह असाध्य रोग से पीड़ित हो गई। नाना प्रकार के इलाज के बाद भी रोग थम न पाया। तब राजा ने घोषणा करवाई कि जो भी राजकुमारी को निरोग कर देगा, उसी के साथ राजकुमारी का विवाह होगा। यक्ष ने राजकुमारी के शरीर में प्रकट होकर कहा कि राजकुमारी ने जिस संत के मुँह पर थूका है, उसके साथ यदि इसका विवाह करवा दिया जाए तो राजकुमारी स्वस्थ हो जाएगी। पिता व पुत्री राजपुरोहित के साथ संत की सेवा में पहुँचे। राजकुमारी को वरण करने का निवेदन किया।

संत ने स्पष्ट इन्कार कर दिया और कहा - मैं तो संत हूँ और इसने मेरा तनिक भी अपमान नहीं किया है। जो सम्मान और अपमान के भाव से मुक्त है, उसके लिए राजकुमारी के वरण का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं यक्ष को अपनी ओर से निवेदन करूँगा कि वह राजकुमारी को क्षमा कर दे। संत की यह अमृतमय वाणी सुनकर



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजकुमारी आँसुओं के निर्झर से भीग गई। सोचने लगी– जिस संत को मैंने जाति का चाण्डाल समझा, वह तो स्वभाव से महान अमृत-पुरुष सिद्ध हुआ। इसकी आत्मा, इसका हृदय कितना विशाल है कि चरणों में आई राजकुमारी को भी वीतराग भाव से इन्कार कर रहा है।

तपस्या समाप्त कर संत आहार-चर्या के लिए निकला। कहीं यज्ञ हो रहा था, वहाँ प्रचुर मात्रा में भोज्य सामग्री बनी थी। वहीं जाकर संत ने भिक्षा की याचना करते हुए कहा कि तुम्हारे द्वार पर संत हरिकेशबल आया है, उसे भिक्षा दो, आहार दो। जैसे ही ब्राह्मणों ने हरिकेशबल का नाम सुना, यज्ञ-स्थल के सारे ब्राह्मण दौड़ पड़े और उसे पीटने लगे कि इसने हमारी यज्ञशाला को अपवित्र कर दिया। एक चाण्डाल ने यज्ञवेदी पर आकर सारे स्थल को अनिर्मल, कलुषित कर दिया। युवा, वृद्ध सभी हरिकेशबल को मारने लगे। पिटते-पिटते जैसे ही हरिकेशबल पृथ्वी पर गिरने वाले थे कि यक्ष ने प्रकट होकर उन्हें थाम लिया और वहाँ उपस्थित सभी लोगों की पिटाई करने लगा।

कोई समझ न पाया कि उन्हें कौन मार रहा है। वह तो अदृश्य रूप से ही अपना काम किये जा रहा था। इतने में ही वह राजकुमारी, जो यज्ञ की मुख्य अतिथि थी, वहाँ पहुँची। उसने सारा वृत्तान्त जानकर कहा कि तुमने किस संयत मुनि की अवहेलना की है। अरे, जिनको तुमने चाण्डाल समझा है वह इस काया में ज्योतिर्मय दीप है। इनसे क्षमा माँगो और कहो, आप अवश्यमेव भोजन स्वीकार करें, हमसे भूल हो गई। जो हुआ वह हमारा अपराध है। अबोध होने के कारण यह सब हुआ।

संत तो शांति की मूर्ति थे। उन्होंने कहा– मैंने तो आप को मारा नहीं है और मैं यक्ष से प्रार्थना करूँगा कि वह मेरे सान्निध्य में रहकर मेरे ऊपर होने वाले किसी भी आघात का प्रतिकार न करे। अति आग्रह से संत ने आहार लिया। आहार के पश्चात् ब्राह्मणों ने संत हरिकेशबल से कुछ प्रश्न पूछे। उन्होंने पूछा– तुम संत हो, मुनि हो, हमें यह बताओ तुम कहाँ स्नान करते हो, तुम्हारा कौन-सा सरोवर है। तुम्हारे शान्ति-तीर्थ कौन से हैं, जिसमें नहाकर तुम विमल, विशुद्ध, पवित्र और इस प्रकार के क्षमाशील स्वभाव के व्यक्ति बने। हरिकेशबल ने जो उत्तर दिया वह उत्तर ही आज का सूत्र है।

हम सूत्र में प्रवेश करें, इसके पूर्व यह समझने का प्रयास करें कि राजकुमारी ने समझा कि संत चाण्डाल जाति का है। हमने सारी मनुष्यता को वर्गों में बाँट दिया है। पूरी मानवता विखण्डित हुई है। जिस मानवता के मध्य हमें कदम-दर-कदम फूल खिलाने चाहिए, जिसके मस्तक पर प्रेम का तिलक लगाना चाहिए उसके स्थान पर हमने, हमारी परम्पराओं ने विभाजन किया है। मानव जाति को तोड़ा है। एक व्यक्ति



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पशुओं को पाल लेगा, उन्हें आश्रय भी दे देगा लेकिन मनुष्य को छूने से परहेज़ रखेगा। जिस परमात्मा के आप स्वयं को अनुयायी मानते हैं उनकी सभा में तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सूचित, अनुसूचित सभी जाति के लोग सम्मिलित होते थे। वह विभेद कर भी कैसे सकता है जिसकी सभा में सत्संग-श्रवण के लिए जानवर तक भी आ सकते हैं।

हमने हरिजनों को अपने धर्मस्थान में आने का अधिकार नहीं दिया है। हम उसे छू भी जाएँ तो स्नान करेंगे। तब आप उस माता को क्या कहेंगे, जो बच्चों का मल-मूत्र साफ करती है, घर में झाड़ू-बरतन साफ करती है। तब क्या वह अस्पृश्य नहीं हो जाएगी? मनुष्य मनुष्य के बीच इतनी बड़ी दीवार! सारी मानव जाति को प्रेम, अहिंसा और करुणा की भावना से जोड़ने की आकांक्षा रखने के बावजूद हम अपने ही नौकर की उपेक्षा करते हैं। अपने घर की साफ-सफाई करने वाले से परहेज़ रखते हैं। मंदिरों का निर्माण केवल उनके लिए नहीं हुआ है, जो उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं। मंदिरों का निर्माण मनुष्यों के लिए हुआ है, उनमें भी विशेषत: उनके लिए जो अधम से अधम माने जाते हैं। उन्हें मन्दिरों में आने दो, अपने धर्मस्थानों में आने दो ताकि वे भी कुछ पवित्र, कुछ पुण्यात्मा, कुछ भव्यात्मा हो सकें। मन्दिर तो पापियों के लिए शरण-स्थल है, जहाँ जाकर वे अपने पापों का प्रायश्चित कर सकें। महावीर तो कहते हैं कि राजा श्रेणिक अगर मेरे दर्शन को आता है, तो मैं नहीं जानता कि वह कहाँ पहुँचेगा लेकिन घोड़ों के पाँवों के नीचे दबकर मरने वाला मेंढ़क जो मेरे दर्शन को आ रहा था निश्चित ही स्वर्ग पहुँच गया। महावीर के दरबार में तो, मेंढ़क को भी आने की इज़ाज़त है और हम एक इन्सान को धर्मद्वार में प्रवेश करने से रोकना चाहते हैं। यह हमारी भूल है।

ज्योति तो ज्योति है, चाहे वह सोने के दीये में प्रकट हो या माटी के दीये में। ज्योति माटी के दीये में भी प्रकट हो सकती है, आध्यात्मिक विकास चाण्डाल जाति के व्यक्ति में भी हो सकता है। मूल्य तो ज्योति का है, माटी या सोने का नहीं। हम सोने के दीये चढ़ा भी दें तो क्या, अगर उनमें ज्योति नहीं है। उस उच्च कुल का क्या करें, जिसमें पैदा होकर नीच कार्य करें। उस निम्न कुल में पैदा हुए को क्या कहें, जो दीया तो माटी का है फिर भी ज्योति प्रज्वलित है। क्षुद्र-से-क्षुद्र जीव में भी विराट-से-विराट संभावना छिपी रहती है। गिरा हुआ व्यक्ति जब उठना शुरू करता है तब वह शिखर की ऊँचाइयों को स्पर्श करता है। वाल्मीकि नामक डाकू जब उठना शुरू हुआ, तो महान ऋषि बना। अंगुलिमाल, जो अति रक्तपिपासु था, मनुष्यों की हत्या कर उनकी अंगुलियों की माला अपनी देवी के चरणों में चढ़ाता था, जब उठना शुरू हुआ, उसकी चेतना में बुद्धत्व के स्पंदन शुरू हुए, चित्त में पवित्रता के स्फुलिंग प्रकट



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए तो वही अंगुलिमाल जीवन के विकास के मार्ग में मृत्यु के निकट पहुँचा तब बुद्ध स्वयं वहाँ उपस्थित हुए और उसे आशीर्वाद देते हुए बोले– अंगुलिमाल तुम्हारी मृत्यु, मृत्यु नहीं आत्म-विजय का अभिषेक है, अरिहंत का उत्सव है।

मनुष्य किसी भी प्रकार अपने अतीत का स्मरण कर सके, जाति-स्मरण ज्ञान हो जाए, तो पता चलेगा कि वह किन कुलों में, किन-किन जातियों में, किन-किन योनियों में गुजरकर आया है। व्यक्ति की असली साधना, पवित्रता तभी बन पाती है, जब जीवन में एक बार जाति-स्मरण का फूल खिल जाए पूर्व-जन्म के बोध का प्रकाश प्रकट हो जाए। अपने इस अतीत को गहराई से पहचान लें तो हमारे जीवन की सारी पर्तें, सारी चट्टानें, सारे पत्थर खुद ही तिरोहित हो जाते हैं। ज्योति तो माटी के दीए में प्रकट होती है। इसलिए हम कहेंगे कोई भी व्यक्ति चाण्डाल नहीं होता, न ही ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र होता है। व्यक्ति का स्वभाव ही ब्राह्मण होता है, व्यक्ति का स्वभाव ही क्षत्रिय होता है, व्यक्ति का स्वभाव ही वैश्य या शूद्र होता है।

हमने जन्मजात जातियों को महत्व दे दिया। यह न देखा कि हमारे अन्दर कैसा चाण्डाल सोया है। यह न जाना कि हमारा स्वभाव अभी ब्राह्मण का है या चाण्डाल का, अभी हमारा स्वभाव सम्यक्त्व का है या मिथ्यात्व का, हमारे हृदय के घर में अभी अंधकार है या प्रकाश, हमारी आत्मा में कालुष्य है या स्वच्छता, मलिनता है या पवित्रता की गंगा। हम अपने स्वभाव के प्रति सचेत और सतर्क नहीं होते हैं। एक बार तो भूल ही जाओ कि तुम जैन या ब्राह्मण कुल में या किसी उच्च कुल में पैदा हुए हो ताकि जीवन में नए सिरे से यात्रा प्रारंभ हो सके। जब स्वयं को उच्च कुल, उच्च धर्म, उच्च वर्गीय रक्त संबंध से अलग करोगे, तब जीवन में नवीन चमत्कार घटित होगा। तुम्हारे भीतर के बीज में अंकुरण होगा जिसकी सौरभ चारों ओर बिखरेगी। वह तुम्हारे जीवन का कमल होगा, जिस पर सभी श्रद्धावनत होंगे।

अब समय आ गया है कि हम पहचानें अपने स्वभाव को, अगर स्वभाव से तुम उच्च हो, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो, तब चाहे जिस कुल में पैदा हुए हो, प्रणम्य और उच्च ही हो। हमने केवल ब्राह्मण या क्षुद्र ही नहीं, और भी न जाने कितने विभेद कर रखे हैं। इतनी दीवारें खड़ी कर दी हैं कि जिसने धर्म के विशाल मंच को छोटे-छोटे कमरों में बाँट दिया है। मानवता को ही विभाजित कर दिया है। हमारा स्वभाव बहुत संकीर्ण और संकुचित हो गया है।

चाण्डाल सचमुच ही अस्पृश्य होता है। कभी स्वयं के क्रोध रूपी चाण्डाल का दर्शन किया है? परहेज रखो अपने क्रोध, लोभ, प्रवंचना और अहंकार के चाण्डाल से। दुनिया में कोई सर्वाधिक कठिन कार्य है, तो वह किसी का स्वभाव बदलना है। करोड़ों का दान देना सहज है, एक माह का उपवास करना भी सहज है, आचरण के



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमान स्थापित करना भी सहज मालूम पड़ता है, संन्यास लेना, दीक्षा ग्रहण करना भी बहुत कठिन नहीं है क्योंकि भावान्तरण हुआ और वेश परिवर्तन कर लिया, लेकिन सच्चा परिवर्तन स्वभाव के परिवर्तन से होता है। और स्वभाव को बदलना सबसे दुष्कर कार्य है। मेरी प्रेरणाएँ स्वभाव को बदलने के साथ जुड़ी हैं। मेरे संदेश चित्त के परिवर्तन के साथ जुड़े हैं। अगर हम अपने स्वभाव के प्रति आत्म-बोध, साक्षी-भाव जाग्रत करते हैं, तो स्वभाव स्वयं ही परिवर्तित होने लगता है।

मन का परिवर्तन ही सबसे बड़ा परिवर्तन है। स्वभाव की गलत आदतें, गलत प्रक्रियाओं के हटते ही तुम महिमावान् बन जाओगे। आपको पता है सर्प योनि में उत्पन्न चंडकौशिक दंश मार रहा है, फुफकार रहा है, ज़हर उगल रहा है, पर महावीर ने उस सर्प को कुछ नहीं किया, केवल उसकी चेतना में रूपान्तरण की वह क्रान्ति घटित की कि चण्डकौशिक संत कौशिक हो गया। उसका जीवन परमशान्त व पवित्र हो गया। जिसका मन, स्वभाव शांत और निर्मल हो गया, वह संसार में रहकर भी संत ही है, गृहस्थ-संत है, परिवार के मध्य संत की आभा है।

कहते हैं: एक संत गंगा में स्नान कर रहे थे। एक दो डुबकी लगाई ही थी कि देखा पानी में बहता हुआ बिच्छू आ रहा है। अपने स्वभावगत करुणा से उस बिच्छू को पानी से बाहर निकालने के लिए हथेली पर उठा लिया। बिच्छू ने हथेली का स्पर्श पाते ही डंक मार दिया। हथेली से छिटककर बिच्छू पानी में जा गिरा। हाथ जलने लगा मगर फिर करुणा आई और डूबते बिच्छू को पुनः उठा लिया। अभी किनारे के पास पहुँचे ही थे कि बिच्छु ने फिर डंक मार दिया और बिच्छू हाथ से पुनः छिटक गया। संत ने तीसरी बार, चौथी बार, पाँचवीं बार बिच्छू को निकालने का प्रयास किया। किनारे पर एक राहगीर खड़ा था, उसने कहा- संत, तुमने पाँच बार बिच्छू को उठाया, उसे किनारे पहुँचाना चाहा। तुम जानते हो यह बिच्छू है; डंक मारना इसका स्वभाव है, फिर इसे छोड़ क्यों नहीं देते। संत ने कहा- तुम ठीक कहते हो। जो बात तुम कहते हो, वही मैंने भी सोची कि जब यह बार-बार डंक मार रहा है, तो इसे छोड़ क्यूँ न दूँ। फिर लगा जब बिच्छू अपना स्वभाव छोड़ने को तैयार नहीं है तो मैं संत होकर अपने स्वभाव को छोड़ने के लिए कैसे तैयार होऊँ। जब बिच्छू अपने स्वभाव पर अडिग है, तो क्या मैं अपने स्वभाव पर अडिग न रहूँ? पाँच या दस बार ही नहीं, मैं तब तक हाथ आगे बढ़ाता रहूँगा जब तक ऐसा करने की मुझमें शक्ति रहेगी।

हम जानें कि बिच्छू का स्वभाव डंक मारना है, संत का स्वभाव सहन करना है। मैं आप सभी से पूछना चाहता हूँ कि आपका स्वभाव क्या कहता है? आपकी आत्मा क्या कहती है कि हम बिच्छू की तरह डंक मारें या संत की तरह औरों को बचाएँ। इस प्रश्न को भीतर तक उतरने दो कि हम मनुष्य होकर सर्प और बिच्छू के स्वभाव में



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आएँ या परिवर्तन के द्वार से संत-स्वभाव स्वीकार करें। यह प्रश्न ही जीवन का उत्तर बन जाएगा। और ऐसा कुछ होता है तो हरिकेशबल द्वारा दिया गया यह जवाब आपके भी कुछ काम का होगा। सूत्र है-

धम्मे हरए बम्भे संति तित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं।।

जब हरिकेशबल से पूछा गया कि भन्ते! आप किस सरोवर में स्नान करते हैं, आपका सरोवर कौनसा है, आपका शान्ति-तीर्थ कौनसा है, जिसकी आप यात्रा करते हैं। वह गंगाजल कौनसा है, जिसमें नहाकर आप विमल व विशुद्ध होते है। ज़वाब में हरिकेशबल ने कहा- आत्मभाव की प्रसन्नता रूप अकलुष लेश्या वाला धर्म मेरा ह्रद है, सरोवर है, अन्तर्ब्रह्म शान्ति-तीर्थ है जहाँ स्नान कर मैं विमल, विशुद्ध और शान्त होकर अपने कर्म-रज और मन-की-मलिनता को दूर करता हूँ।

सूत्र कहता है कि प्रसन्नता ही मेरा सरोवर है और भीतर का ब्रह्म, भीतर की आत्मा ही मेरा शान्ति-तीर्थ है। अपने भीतर के सरोवर में स्नान करके ही अपने जन्म-जन्मान्तरों की मलिनता को, चित्त की विकृतियों को और मन के मालिन्य को धोता हूँ।

इतनी गहराई भरा सूत्र...बहुत आनन्द देता है। प्रसन्नता, हर क्षण की प्रसन्नता ही तो वह सरोवर है जिसमें स्नान कर व्यक्ति विमल और विशुद्ध बनता है। यही तो प्रयास है कि सारी मानवता को हम अपनी ओर से प्रसन्नता और प्रमुदितता का प्रसाद दे सकें। धरती पर मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो हँस सकता है, फूलों की तरह खिल सकता है, मुस्कुरा सकता है, प्रमुदित हो सकता है।

प्रसन्नता से भरे हुए होने पर हर जगह आनन्द और खुशी दिखाई देती है। विषाद की अवस्था में हर वस्तु विषादमयी नज़र आती है। प्रफुल्ल ह्रदय से बगीचे में जाने पर फूल, पौधे भी विहँसते दिखाई पड़ते हैं और दुखी मन से, विपन्न और दरिद्र ह्रदय से बगीचे में जाने पर फूल भी मुरझाये हुए दिखाई देंगे। प्रसन्न ह्रदय व्यक्ति को तो पूरी धरती ही स्वर्ग दिखाई देती है और विक्षिप्त और उद्वेलित व्यक्ति को धरती से बढ़कर नरक, धरती से बढ़कर निगोद दूसरा नज़र नहीं आता। धरती का स्वर्ग और नरक होना हमारी दृष्टि पर निर्भर है। आप किसी को धन-सम्पत्ति देकर नहीं, अपनी मधुर-मुस्कान से अपना बना सकते हैं। आपकी प्रसन्नता का आभामंडल उस व्यक्ति को बार-बार आपकी ओर लाएगा। प्रसन्नता तो उस चंदन की तरह है, जो तिलक लगाए जाने पर सामने वाले के सिर को शोभित करता है और वह अंगूठा भी सुरभित हो जाता है, जिससे तिलक लगाया गया है। उसकी सुरभि, केवल उसे ही


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुरभित नहीं बनाएगी, आपको भी सुगंधित करेगी। जो हर समय, हर हाल में प्रसन्न है वह मानो परमात्मा की ही भक्ति कर रहा है। प्रतिकूल और अनुकूल दोनों ही स्थितियों में खुश रहना चाहिए। मेरा एक ही संदेश है: सदा प्रसन्न रहिए– उत्सवपूर्ण और ऊर्जावान।

जो स्वयं में रहता है, वह आठों याम, चौबीसों घंटे वर्ष भर, जीवन भर आनन्दित और प्रमुदित रहता है। हमें तो स्वयं में रहना है। किसी ने गाली दी उसकी मौज, प्रशंसा की उसकी मौज। हमें तो निर्विकार भाव से उन सबको ऊपर से गुजर जाने देना है। हमारी आन्तरिक प्रसन्नता ही हर समय प्रकट हो। अभिनेता तो नाट्यमंच पर पाँवों में घुँघरुओं के समान हर समय अहोनृत्य करता दिखाई देगा। हमें हर समय झूमना है, अहोनृत्य करना है। जीवन उत्सव हो जाना चाहिये।

फूल खिलता है क्योंकि खिलना उसका स्वभाव है। भौंरे उसकी ओर आकर्षित हों इसलिए नहीं खिलता। खिलना ही उसके जीवन का सृजन, जीवन का सौन्दर्य, जीवन का प्रसाद और जीवन का उपसंहार है। भौंरे आते हैं यह न फूल का गुण है, न अवगुण। सौरभ बिखरेगी तो भौंरें आएँगे और न भी आएँ, तो फूलों को कोई शिकायत नहीं रहती। उसके लिए खिलना ही आनन्द है। जिसके लिए स्वयं की प्रसन्नता ही आनन्द है, उसके लिए कोई हो न हो, अंतर–मीरा तो नाचती ही है। उसकी पायल झंकृत होती ही है, बिना बजाए ही वीणा गुंजार करती है। नहीं है कोई बादल, फिर भी कहीं से फुहारें गिर रही हैं 'बिन घन परत फुहार'। नहीं है बादलों की गर्जना फिर भी बिजली का प्रकाश चमक रहा है।

दिया जिन्होंने स्नेह, सभी का मुझ पर कर्जा,
प्राणों को दी व्यथा जिन्होंने वह सब उनका।
कोमल हाथों में सौंपी जिसने ज्वाला की थाती,
मेरा क्या है मैं तो केवल लघु दीपक की बाती।

मैं तो दीपक की छोटी–सी बाती हूँ। मेरा क्या है? जो कुछ है वह सब तेरा है, तेरा ही अवदान है। जो कुछ है वह अस्तित्व की ही अमृत वृष्टि है। यहाँ तो एक सहज दीया जल रहा है, उससे और कुछ दीपक जगमगा उठें तो सौभाग्य, न भी जल पाएँ तो कोई गम नहीं। महावीर के पास, गौतम के पास हजारों लोग पहुँचे, न भी पहुँचते तो कोई गिला न करते। पहुँच गए तो ज्योति का प्रकाश और फैल गया। दीया तो जल ही रहा है। जीवन तो परमात्मा को समर्पित है। यह उसका काम है कि वह हमसे क्या करवाना चाहता है। भलाई, परोपकार हो तो ठीक, वरना हम तो अपनी मौज में हैं। अंतरहृदय में वीणा की झंकार है, मीरा के घुँघरू हैं। आपके लिए



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह शरीर सलौना पुतला होगा, मेरे लिए तो बाँस की पोंगरी है, बाँसुरी है। आप बाँस को लाठी के रूप में मरणोपरान्त सीढ़ी बनाने के लिए काम लेते होंगे लेकिन, जिसने जाना है, जिनके भीतर संगीत पैदा हुआ है, आनन्द का निर्झर प्रवाहित होता है, वह जानता है कि यह केवल लकड़ी नहीं है। इस पोंगरी में मधुर संगीत छिपा हुआ है, बस बजाने की कला आनी चाहिए। जब बाँस संगीत दे सकता है तब क्या आप अपने जीवन में आंतरिक संगीत पैदा नहीं कर सकते? स्वयं जीवन को पंच-कल्याणक महोत्सव नहीं बना सकते?

सदा प्रसन्नचित्त रहना जीवन के कायाकल्प का पहला चरण है। प्रसन्न रहें- चाहे परिस्थितियाँ अनुकूल न भी हों, तो भी प्रसन्न रहने का प्रयास करें। इससे सहनशीलता बढ़ती है और आसपास का वातावरण, मिलने वाले लोग सहज ही प्रसन्न होते हैं और उनकी यह प्रसन्नता पुनः आप में प्रतिध्वनित होती है। इस तरह प्रसन्नता का वर्तुल निर्मित हो जाता है जो हमें जीवन के प्रति अधिक उत्साहपूर्ण, ऊर्जस्वित एवं जागरूक बनाता है।

प्रसन्नचित्त रहने का कोई अवसर न छोड़ें। हर मिलने वाले का भरपूर मुस्कुराहट से स्वागत करें। जीवन में आसपास ऐसा क़ाफ़ी कुछ बिखरा पड़ा है, जिस पर हँसा-मुस्कराया जा सकता है। अच्छा होगा, कभी अपने आप पर भी हँसें। हँसना भी एक माध्यम बन सकता है बुद्धत्व का, विकारों के रेचन का। इससे स्फूर्ति भी आती है और शुद्धि भी। ऐसे विषयों पर अपने चित्त को एकाग्र होने से बचाएँ, जिनसे तनाव बढ़ता हो। विषय परिवर्तन कर अपना ध्यान किसी रुचिकर विषय पर लगाएँ या किसी पसंदीदा काम में स्वयं को पूर्ण सजगता से, होशपूर्वक व्यस्त कर लें। त्रासदायक विचार स्वतः विलीन हो जाएँगे और अगर कभी कोई तनाव, क्रोध, वासना, उद्विग्नता उभरे, तत्क्षण स्वयं को मंद-गहरे श्वास-प्रश्वास पर केन्द्रित करें। श्वान के रेचन पर विशेष जोर दें। इससे तीन-चार मिनटों में ही मन शांत होने लगेगा।

अपने जीवन को महत्व दो तो प्रसन्नता के फूल खिलते हैं, आनन्द का आह्लाद होता है। स्वयं को कर्ताभाव से अलग कर साक्षीभाव में ले आओ। साक्षीभाव की गहनता से कर्ताभाव टूटता जाएगा। ज्यों-ज्यों कर्ताभाव टूटेगा, कर्म के प्रति सजगता बढ़ती जाएगी। कर्ता के प्रति साक्षी होना और कर्म, विकल्प, विषय के प्रति सजग होना तथाता होने का प्रथम चरण है।

तीन बातें स्मरण में रखें, प्रथम-कर्ता से स्वयं को अलग रखें। अंदर का साक्षी इतना गहरा हो कि कर्ताभाव स्वयं से छूट जाए। तब जीवन में पहली बार अपूर्वकरण गुणस्थान घटित हेाता है, जब व्यक्ति के भीतर से कर्ताभाव टूट जाए। जो होना है वह हो रहा है चाहे अच्छा या बुरा। मैं तो न अच्छा कर रहा हूँ, न बुरा। मैं इन दोनों के द्वन्द्व



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से अलग, तटस्थ हूँ। दूसरा - सजगता, हर कार्य के प्रति सजगता। जो कुछ भी कर रहे हो जागरूकतापूर्वक करो। खाना भी खाओ तो सजगता से। चलना भी सजगता से, सोना भी जागरूकतापूर्ण। हम साँस भी लें तो सजगता के साथ, बाहर भी छोड़ें तो ज्ञात रहना चाहिए कि साँस बाहर गई। जो व्यक्ति अपनी साँस के प्रति सजग हो सकता है वही, केवल वही अपने चित्त को शांत निर्विकल्प रख सकता है। रखना नहीं पड़ता, शांत हो ही जाता है। करना नहीं, 'होना' होता है। वह प्रज्ञा और समाधि में ही विचरता है।

जीवन में क्रांति हो जाएगी अगर आप क्रोध भी सजगतापूर्वक कर सकें। आप पाएँगे कि क्रोध हो ही नहीं पा रहा। सच्चाई तो यही है कि क्रोध के समय होश नहीं रहता, अगर होश है तो क्रोध नहीं और क्रोध है तो होश नहीं। क्रोध का बोध होते ही क्रोध तिरोहित हो जाता है। अन्दर का होश जाग्रत होते ही कर्म का मालिन्य भी हमें छू नहीं पाता और हम स्वयं का अन्तर-अभिषेक करने लग जाते हैं। सजगता का सातत्य बना रहे फिर कोई दूषण प्रदूषित नहीं करता। साक्षीत्व स्वयं को निर्मल और पवित्र बनाने का उपक्रम है। व्यक्ति के भीतर ही आनन्द है। शान्ति-तीर्थ हमारे भीतर है, अन्तर-घट में है। यदि शांति-तीर्थ को उपलब्ध करना है, तो अपने भीतर प्रवेश करो क्योंकि वह हमारी अन्तरात्मा में ही है। जहाँ साक्षी है, वहाँ तथाता का भाव है।

भगवान बुद्ध को तथागत कहा गया है। तथाता का अर्थ है हमारी ओर से कोई क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं। जो जैसा है उसे उसी रूप में स्वीकार करने का नाम ही तथाता है। भगवान के पास अस्वीकार नहीं है, इसीलिए वे तथागत हैं। यह सर्वोत्कर्ष स्थिति है, कैवल्य की स्थिति है। व्यक्ति भीतर प्रविष्ट हो; वहाँ शान्ति-तीर्थ है। जितने भी महापुरुष हैं, सब आदरणीय हैं लेकिन हम उनकी चिन्ता छोड़ें, हम स्वयं वही होने का प्रयास करें। दूसरा महावीर या बुद्ध नहीं हो सकता। हम जो हैं उसी में पूर्णता पाने का प्रयास करें। महावीर दूसरा नहीं होगा, तुम्हें अपना महावीर स्वयं होना होगा।

सुबह शाम आधा घंटा ध्यान में उतरो। डूबो। स्वयं को शान्ति-तीर्थ में ही पाओगे। जहाँ तुम हो, वहीं सारे तीर्थ हैं। बाहर यात्राओं पर नहीं जाना होगा, भीतर की यात्रा में सारे तीर्थ आ जाएँगे। जीवन की यात्रा में सम्पूर्ण तीर्थ-यात्रा समाविष्ट है। अन्तरहृदय में है वह शांति-तीर्थ। लम्बी साँसों के साथ सोऽहं का स्मरण करो। दस-पन्द्रह मिनट तक लम्बी साँस चलने दो और फिर उतर जाओ अन्तर-हृदय में, अन्तरघट में। हृदय-क्षेत्र में गहराई बनाते चले जाओ। आप सहज शान्ति-तीर्थ को उपलब्ध हो जाएँगे। अपने आपको उपलब्ध हो जाएँगे।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# समझें, धर्म का रहस्य

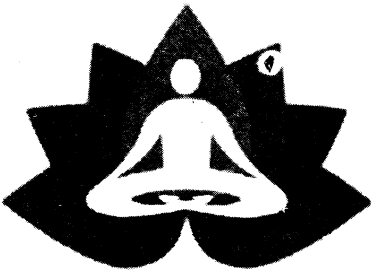

◆ *धर्म में बढ़ते हुए सम्प्रदायवाद, कट्टरता, रूढ़िवाद, आडम्बर और प्रदर्शन पर अनावश्यक खर्च इत्यादि से समाज में भयानक गिरावट आ रही है। यह समाज के पतन का संकेत है। इस परिस्थिति से उबरने के लिए समाज में कैसे परिवर्तन लाया जाए?*

समाज एक ऐसी दिशा की ओर बढ़ रहा है जिसका न कोई स्पष्ट लक्ष्य है और न मंजिल। गतानुगतिक की तरह एक जिधर जा रहा है बिना सोचे समझे शेष लोग भी उधर ही बढ़ रहे हैं। आज का विश्व बौद्धिक है, ज्ञानमूलक है फिर भी किसी के पास यह सोचने का समय ही नहीं है कि उसके जीवन का, जीवन-मार्ग का, समाज का, सामाजिक मूल्यों का क्या लक्ष्य है, क्या परिणाम है।

कुछ बुद्धिजीवी समाज की इस दशा पर चिन्तन-मनन कर लेते हैं, दुर्दशा पर आँसू बहा लेते हैं लेकिन इससे सक्रियता नहीं आती, रूपान्तरण नहीं होता। जब तक भेड़ों के टोले में रहेंगे, अपने सोए हुए सिंहत्व को नहीं जगाएँगे, समाज की ऐसी ही स्थिति रहेगी। न केवल समाज की अपितु उन सभी की यही स्थिति होगी जिनके अंदर अध्यात्म का सिंहत्व सोया है। महापुरुषों ने करुणावश हमें धर्म का रस दिया, मानवजाति को उपकृत किया कि धर्म का सही स्वरूप जान सकें, लेकिन महापुरुषों ने जिस पात्र में धर्म-रस उँडेला उसे तो कोई मतवाला पी गया, कोई दीवाना पीकर मतवाला हो गया, हमारे पास तो केवल रीते पात्र ही शेष रह गये। पात्रों में अमृत भरा



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाए इसके लिए कोई चिन्तित नहीं है, जागरूक नहीं है। हर व्यक्ति पात्रों से चिपका है, कपड़े और रूप-रूपायों के लिए लड़ रहा है। हमारी आस्थाएँ, हमारे मूल्य बिन पेंदे के पात्रों के समान हैं। दो नावों पर सवार होकर भी हम स्वयं को बचा सकते हैं लेकिन खतरा तो यह है कि नावों में छेद-ही-छेद हैं। तुम डूब ही रहे हो क्योंकि पहले तो दो नावों पर सवार और फिर ऊपर से नावों में छेद! इन छिद्रों को भरने के प्रति कोई चेतना भी नहीं है।

धर्म में इतनी कट्टरता, साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता? धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। यह तो निजता से जुड़ा है। जब भी इसे निजता से हटाकर बाह्य रूप दिया जाएगा, यह किसी सम्प्रदाय, मत, पंथ, मजहब का रूप ले लेगा। धर्म को व्यक्ति से जोड़ना चाहिए। जब भी इसे समूह के साथ जोड़ा जाएगा वह सम्प्रदाय बन जाएगा। व्यक्ति की आत्मा होती है। भीड़ की कोई आत्मा नहीं होती। भीड़ तो भेड़ के माफ़िक चलती है। व्यक्ति जाग सकता है क्योंकि उसमें चेतना होती है। भीड़ कभी जागी है? वह सिर्फ उत्तेजित होती है और उत्तेजना में ही जीवित रहती है।

धर्म के सही स्वरूप को न जानने से ही इतने विभेद हो गए हैं। उस स्वरूप को न जाना जिसका संबंध चित्त की शुद्धता, आत्मा की पवित्रता और भीतर के कषायों की निर्जरा के साथ जुड़ा हुआ है। हमने धर्म को बाहरी रूप-रूपाय में, वेश-भूषा में, क्रिया-काण्ड में ही उलझा दिया है। देखिए कितने भेद हैं। हिन्दू समाज में सनातनी अलग, आर्य समाज अलग, जैनों में श्वेताम्बर-दिगम्बर, मुसलमानों में शिया-सुन्नी, बौद्धों में हीनयान-महायान, ईसाइयों में कैथोलिक-प्रोटेस्टेण्ट। ये अलग-अलग ही नहीं, परस्पर विरोधी भी हैं।

हमने परमात्मा के विभाजन कर दिए हैं। जिसके हाथ जो आया वही खींच ले गया। किसी ने अंगुली तोड़ी तो किसी ने अंगूठा। जिसके हाथ गर्दन आ गई वह गर्दन ले उड़ा। इन सम्प्रदायों ने धर्म की मूल आत्मा की हत्या ही कर दी। जिसके हाथ जो आया वह उसी का परचम लहरा रहा है। अब हम प्रयास कर रहे हैं कि हमारे देश के विभिन्न सम्प्रदाय एक होने की चेष्टा करें। शायद एक हो भी जाएँ, लेकिन जो धाराएँ बन चुकी हैं वे फिर भी अलग-अलग ही दिखाई देंगी। मैंने एक दफ़ा कहा था सौ वर्ष बाद मकान गिरा देना चाहिए और हज़ार वर्ष बाद 'धर्म' मिटा देना चाहिए। यह इसलिए कि धर्म अपने मूल स्वरूप से विच्छिन्न हो जाता है और एक मत या सम्प्रदाय का रूप ले लेता है।

धर्म के अधिकारियों ने धर्म को इतने अलग-अलग रूपों में परोसा है कि व्यक्ति पागल हो जाए; क्या करे, क्या न करे। कोई धर्म कहता है कि सिर मुंडा कर रखो, दूसरा कहता है जटा बढ़ाकर रखो। कोई कहता है चोटी रखो, कोई कहता है



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोटी मत रखो। अब चोटी में भी पतली-मोटी, लम्बी-छोटी के झगड़े हैं। कोई दाढ़ी में धर्म मानता है, दाढ़ी भी तरह-तरह की, मूँछ वाली-बिना मूँछ वाली। कोई चंदन का तिलक लगाता है, कोई भस्म का, तो कोई कुंकुम का, उसमें भी अलग-अलग डिजाइन। फिर मालाओं की झंझट - तुलसी की, चन्दन की या रुद्राक्ष की हज़ार रूप बना रखे हैं। अब झगड़ा वस्त्रों का - कहीं पीताम्बर, कहीं श्वेताम्बर। धर्म का बाह्य स्वरूप इतना बिगड़ गया है कि मूल आत्मा तो कहीं खो ही गई है। हम सिर्फ़ बाहर के रूप पर आकर्षित होते हैं। धर्म किसे मानें? भोजन करना है तो कहेंगे पात्र में या कर-पात्र में। चलो पात्र में भोजन किया तो श्वेताम्बर कहेंगे लकड़ी के पात्र में, बौद्ध कहेंगे लौह-पात्र में, हिन्दुओं का मत है ताम्र-पात्र में। चलना है तो कोई वाहन-यात्रा स्वीकार करता है, कोई कहता है पद-यात्रा करने से ही धर्म होगा। पद-यात्रा में भी पदत्राण पहना जाए या न पहना जाए।

धर्म हज़ार रूप ले चुका है। अब कोई पूछे कि तुमने बाल रखे या नहीं इससे तुम्हारी आत्मा में कौन-से संस्कार आए? तुम चप्पल पहनकर चले या नंगे पाँव, तुम्हारी वृत्ति में या जागरूकता में यह कहाँ उपयोगी है? तथाकथित धर्म में बहुत विरोधाभास है। रात को धर्म-स्थान में चलेंगे तो डण्डासन (झाड़ू जैसा उपकरण) करते हुए, परिमार्जन करते हुए चलो, लेकिन सुबह चार बजे अंधेरे में विहार कर जाते हो तब कौन-सा डण्डासन चलता है? कहाँ परिमार्जन हो पाता है।

यहाँ सामायिक करते हो, मुँहपत्ती बाँध लेते हो, पर जब एक घंटा बिल्कुल मौन ही रहना है फिर मुखवस्त्रिका की क्या आवश्यकता? जब घर में सास-बहू झगड़ा करती है, पति-पत्नी के मध्य बहस होती है, ग्राहक-व्यवसायी के बीच मनमुटाव होता है, उस समय ये मुखवस्त्रिकाएँ कहाँ चली जाती हैं। उस समय इनका उपयोग क्यों नहीं करते। मैंने तो धर्म का यही रूप जाना है कि व्यक्ति अपने चित्त को शुद्ध बनाए, अपनी आत्मा को निर्मल बनाए। राग-द्वेष से रहित होकर पवित्रता से और मोह-बन्धनों से मुक्त होकर निर्ग्रन्थ जीवन जीए, यह धर्म का सार है।

महावीर को समझें और महावीर उचित लगे तो उनके प्रति आस्था रखें। बुद्ध ठीक लगे, तो बुद्ध की पूजा करें। जो आपके मन को भा जाए, वही ठीक। चाहे जो हो, सबका नवनीत एक ही है - मन की शांति, अन्तरात्मा की निर्मलता। जप करने वाला व्याकुल रहे, ध्यान करने वाला अतृप्त और विचलित रहे, तपस्वी चिड़चिड़ाता रहे, तो मैं नहीं जानता कि वह कितना धर्माचारी हुआ।

धर्म के नाम पर हम क्रिया-काण्डों में उलझ गए और उसे ही धर्म मानने लगे। छुआछूत, जात-पात, बलि देना, प्रसाद चढ़ाना, इन सबको हमने धर्म समझ लिया है। हमने इतना ही धर्म जाना कि प्रतिदिन मंदिर जाओ, प्रतिमा को मत्था टेक दो और



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घर वापस चले जाओ। क्या इतने से तुम धार्मिक हो गए? तुम्हारे भीतर के उन पापों का न्याय कौन करेगा जो हम मंदिर के बाहर दिन-रात करते हैं। मंदिर में आते हो दस मिनट के लिए और संसार में रहते हो तेईस घंटे पचास मिनट। पलड़ा कहाँ बराबर हो पाता है? इसीलिए कहता हूँ सारे संसार को मंदिर मानो। जितने शुद्ध मन से, पवित्रता के साथ मंदिर आते हैं उतनी ही पवित्रता से अपने कदम संसार की ओर बढ़ाओ। जितना पवित्र मंदिर रखना चाहते हो, अपने घर को भी उतना ही स्वच्छ-पवित्र रखो अन्यथा घर से बाहर ही मंदिर की कल्पना साकार होती रहेगी। और फिर मंदिर कौन बनाता है? तुम्हीं न्, फिर घर को ही क्यों न मंदिर बना लें?

धर्म को जीवन के साथ जोड़ें। जीवन को धर्म से अलग करते ही हमारे नैतिक मूल्यों का भी पतन हो जाता है। ईमानदारी की बातें करते हुए, बेईमान मत बनो। एक समय था जब ईमानदारी से मनुष्य धन कमाता था इसलिए यह नीति थी कि धन कमाना है तो ईमानदारी रखो। आज तुम सोचते हो, ईमानदारी रखी तो भूखे मरेंगे। अभी एक रिटायर्ड एस.पी. कह रहे थे मैंने जीवन में कभी रिश्वत नहीं ली लेकिन मेरे बेटे मेरी उपेक्षा करते हैं और कहते है एस.पी. होकर तुमने क्या पाया, क्या कमाया। मैं कहता हूँ मैंने ईमान कमाया, मैं रात में चैन से सोता हूँ। मुझे दो वक़्त आराम से भोजन मिलता है, लेकिन मेरे बेटे, मेरा परिवार इस बात को समझ नहीं पाते। आज व्यक्ति बेईमानी करता है तो पैसा मिलता है, इसलिए आज की नीति ईमानदारी नहीं बेईमानी बन गई है।

दुनिया में आज पैसा ही मूल्यवान हो गया है। जिस देश में महावीर और बुद्ध ने अपरिग्रह का सिद्धान्त दिया, मुक्ति का मार्ग दिखाया, भौतिकवाद से ऊपर उठने के सूत्र दिए, उस देश के लोग आज सबसे अधिक पैसे के लिए लालायित हैं। यहाँ व्यक्ति के गुणों की कीमत ख़त्म हो रही है, सिर्फ चमड़ी और दमड़ी की कीमत हो गई है। धन तो सिर्फ़ साधन है, लेकिन हमारी बुद्धि इतनी परिग्रहशील हो चुकी है कि हमें सिर्फ़ पैसा चाहिए। इस चाह में जैसे सभी भिखारी हो गए हैं, कोई छोटा तो कोई बड़ा । संसार को दान का संदेश देने वाला खुद औरों के अनुदान पर निर्भर रह रहा है। हमारी मानसिकता भिखारी की बन गई है।

मनुष्य का मन अत्यन्त विकृत हो गया है। बाहर से साफ-सुथरा लेकिन भीतर वहशीपन से भरा हुआ, पतन के गर्त में जाता हुआ। मेरे देखे व्यक्ति सिद्धांतों को जीए, चित्त को शुद्ध बनाए, आत्मा की निर्मलता की ओर ध्यान दे। हम यह समझ लें कि दूसरा कोई देखे या न देखे मैं तो स्वयं को देखने वाला हूँ। वह परम पिता परमात्मा तो सभी को देख रहा है। ज़हर चाहे छिपकर पीओ या सबके सामने, ज़हर तो अपना असर दिखाएगा ही। मैं तो कहता हूँ पुण्य करो या दान, छिपकर करो और पाप को



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट कर दो, ताकि हमारा पाप, पाप न रह जाए, लेकिन हमारा मन प्रशंसा चाहता है इसलिए घोषणाएँ करते हुए दान दिया जाता है, पर दूध में पानी चुपके से मिला देते हैं कि किसी को पता न चले।

वास्तव में व्यक्ति के हाथ में शव रह गया है, शिव छूट चुका है। वह प्रतिदिन मंदिर जाता है लेकिन अहंकार नहीं छूटता। अहंकारों की टकराहट होती है और सब टूट जाता है। व्यक्ति आत्मा-परमात्मा की बड़ी ऊँची चर्चाएँ करता है लेकिन ये सिर्फ़ चर्चाएँ ही हैं। उनका जीवन देखो एकदम भौतिकता से लिप्त। ईश्वर में आस्था रखने वाला भी कल की चिन्ता में डूबा है और जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, स्वयं को अनात्मवादी कहते हैं, वे अहंकार में उलझे हैं।

मेरा तो यही कहना है हम स्वयं के बारे में सोचें, मनन करें और आन्तरिक कषायों को समाप्त करने का प्रयास करें। आप पूछते हैं इस परिस्थिति से उबरने हेतु समाज में परिवर्तन कैसे लाया जाए? मेरा कहना यही है कि अगर समाज को बचाना है तो सबसे पहले अन्धविश्वास से बचें। समाज और तुम, इन पाले हुए अन्धविश्वासों से स्वयं को अलग करो, बुद्धि का प्रयोग करो। वैज्ञानिक समझ से इनको देखें और असंगत को परे हटाएँ। किसी अन्य ने किया इसीलिए तुम मत करो। अंधों के गतानुगतिक मत बनो। जब तक स्वयं को पूर्णरूपेण परिपक्व श्रावक न बना लो तब तक श्रमण होने का प्रयास मत करो, उसकी योजना भी मत बनाओ। अच्छे श्रावक न हुए तो अच्छे मुनि कैसे हो पाओगे? साधु-मार्ग तो अपना लोगे लेकिन फिर वही इच्छाएँ, एषणाएँ, कामनाएँ उभरेंगी। तब बाह्य - आवरण साधु का और मन गृहस्थ ही होगा। जैसे परिवार में सन्तान की कामना होती है वैसे ही संन्यास में शिष्यों की चाह बढ़ जाती है। यहाँ भी एक संसार बसने लगता है और गुणवत्ता खो जाती है।

महावीर ने सम्यक्-दृष्टि का सूत्र दिया कि व्यक्ति अपने अन्ध-विश्वासों से बाहर आए और सम्यक्-दर्शन को उपलब्ध हो। मैं चाहता हूँ हम अपने समाज को, अपने धर्म को प्रलोभन से बचाएँ। इस प्रलोभन ने धार्मिक भावना को समाप्त कर दिया है। हम या हमारे बच्चे जब धर्म-स्थल पर, धर्म-सभा में जाएँ तो धर्म-भावना से जाएँ, किसी प्रभावना या प्रसाद के लालचवश न जाएँ। उन्हें समझाएँ कि मंदिर से मिलने वाले नारियल, लड्डू, रुपये-पैसे तुम स्वीकार नहीं करोगे। हमें प्रलोभन नहीं चाहिए। व्यावसायिक बुद्धि से धर्म को अलग करें। अन्यथा धर्म को कोई नहीं बचा सकेगा। संवत्सरी पर प्रतिक्रमण करने पूरी धर्म भावना से जाएँ, किसी लालच से नहीं कि आज तो अलग-अलग प्रकार की प्रभावना मिलेगी। लोगों का मत रहता है कि पर्व का दिन है आज तो प्रभावना कर ही लें। नहीं, कम-से-कम पर्व के दिन तो प्रभावना बिल्कुल ही मत करो। प्रलोभन हमारी नसों में रक्त की तरह प्रवाहित हो



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहा है, धर्म को प्रलोभन से मुक्त करना है। त्याग-वैराग्य-वीतरागता को बढ़ाना है।

प्रलोभन से तो छुटकारा पाना ही है, इसी के साथ गुणग्राहकता को बढ़ाना है। किसी सम्प्रदाय, विशेष से मत बँधो। सब जगह जाओ, गुणग्राही बनो, अपनी दृष्टि को गुणात्मक बनाओ। ज्ञान किसी की बपौती नहीं है। ज्ञान सिर्फ ज्ञान होता है। ग्राहकता का भाव रखो। जब विद्यालय में शिक्षक को गुरु बना लेते हैं, तो जीवन में तो अनेकों सुशिक्षा देने वाले मिलेंगे, सबसे ग्रहण करो। जो श्रेष्ठ हो उसे जीवन में उतारने का प्रयास करो। सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।

'सूरज को बाँध ले चली आंचल में छाया'- फ़र्क़ सिर्फ प्रकाश और अंधकार का है। सूरज के प्रकाश को, धर्म को ये अन्धविश्वास की परछाइयाँ अपने आँचल में बाँधकर न जाने कहाँ भटका रही हैं।

सूरज को बाँध ले चली अपने आँचल में छाया।
क्यों नियत काल के आगे पुरुषार्थ पराजित लगता?
अँधियारा दीप तले का क्यों दीपक को ही छलता?
तप अग्निपरीक्षा में ही सोना कुन्दन होता है।
मुस्कानों को पाने से पहले रोना होता है।
जो विष पी उसे पचाता वह शिवशंकर होता है;
अन्यथा अमी पीकर भी देवों का कुल रोता है।

जैसे अमृत पीकर भी देवों के कुल ने क्रंदन किया था, वैसे ही धर्मस्थानों में जाकर भी खाली लौट आएँगे। जीवन में अगर संन्यास न ले पाओ, संसार न छोड़ पाओ तो चिन्ता न करना; बस इन सम्प्रदायों, पंथों के दुराग्रह और राग को छोड़ देना; इन्हीं से संन्यास ले लेना। यह पहला संन्यास होगा कि तुम गण-गच्छ, मजहब के दुराग्रहों को त्यागो और सत्य के लिए जीवन समर्पित करो। सत्य को जीएँगे, सत्य के लिए मरेंगे, सत्य को उपलब्ध होकर जीवन से गुजरेंगे।

◆*आत्मानुभव का सरल, सुगम रास्ता कौन-सा है? कोई तप, कोई योग, तो कोई ध्यान की बात करते हैं। कृपया अपने अनुभव से हमें कृतार्थ करें।*

आत्मानुभव का सबसे सरल, सुगम और प्रशस्त मार्ग ध्यान है। ध्यान धर्म की कुंजी है, धर्म का अर्थ है, धर्म की वास्तविकता और धर्म का अभिप्राय है। ध्यान के अभाव में धर्मशास्त्र बिल्कुल पाकशास्त्र की तरह है। पाकशास्त्र की पुस्तक उठाओ, पृष्ठ पलटो, मिठाइयों की तस्वीर मिल जाएगी, मिठाइयों का स्वाद नहीं मिलेगा। चाहे योग हो या तप, पूजा हो या प्रार्थना - धर्म का कौन-सा मार्ग ऐसा है जिससे


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान जुड़ा हुआ न हो।

ध्यान को हम भुला बैठे हैं, इसीलिए तप अब काया-क्लेश हो गए हैं। कमठ भी तो तप कर रहा था। एक-एक माह का उपवास कर रहा था। पंचाग्नि तप रहा था। फिर क्या कारण था कि पार्श्वकुमार ने उसके तप का विरोध किया। आज आप सर्दियों में तप करते हैं, तो अंगीठियाँ जलाते हैं और गर्मी में तप करते हैं, तो एयरकंडीशनर चलाते हैं; फ़र्क़ कुछ नहीं है वही पंचाग्नि तप है। आज पार्श्वकुमार होते, तो वे पुनः इस तप का विरोध करते। हमारे धर्मों ने गुप्त-दान की तो बात कही पर गुप्त-तप की चर्चा क्यों नहीं की। शास्त्र कहते हैं नामोल्लेख के साथ किया गया दान कीर्ति-दान होता है, इसलिए निष्फल गया। मैं पूछूँगा तपस्या करके जिसने समाज के बीच फूलमालाएँ पहनीं, रास्तों पर जलसे किए, जुलूस निकाले उनका तप कीर्ति-तप क्यों न हुआ? और कीर्ति-तप होने के कारण वह निष्फल क्यों न चला गया?

ध्यान का अभाव हो गया है। ध्यान हमारे जीवन से निकल गया है। कुछ, आत्मभाव को उपलब्ध हुए लोगों ने फिर से ध्यान की लौ, ध्यान की अलख जगाई है और पूरे विश्व में ध्यान की आत्मा प्रसारित हो रही है। ध्यान का आभामण्डल विस्तार ले रहा है। लोग समझ रहे हैं ध्यान और योग का क्या अर्थ, अभिप्राय और महत्व।

महावीर ने एक बहुत गहरी गाथा कही है - सीसं जहा शरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य, सव्वस्स साधु धम्मस्स तहा झाणं विधीयते। महावीर ने कहा - जैसे शरीर का मूल सिर है, जैसे पेड़ का मूल उसकी जड़ है, वैसे ही समस्त साधु-धर्म का सार ध्यान है। यदि ध्यान है, तो तप आपको प्रगाढ़ता दे जाएगा। प्रार्थना के साथ ध्यान जुड़ गया, तो प्रार्थना जीवन्त हो जाएगी। पूजा के साथ ध्यान की चेतना है, तो पूजा परमात्मा का प्रसाद हो जाएगा। पूजा, प्रार्थना, तप ये सब ध्यान के साथ हों। यदि तप करते हो तो उसे ध्यान के साथ जोड़ो, जिससे तप केवल उपवास न हो, वह हमारे भीतर के कषाय, कचरे को जलाने में सहायक हो जाए। तप ऐसा हो जो हमारे क्रोध को जला डाले और भीतर क्षमा का स्रोत जगा दे। तभी तप सार्थक है।

तुम मासक्षमण करते हो और कभी स्नान करते समय दो बूँद पानी मुँह में चला जाता है तो गुरु के पास प्रायश्चित पूछने जाते हो। लेकिन तप के दौरान जो क्रोध करते हो, झगड़ा करते हो, पति से कहते हो मुझे सोने की चेन बनवाकर नहीं दोगे तो पारणा नहीं करूँगी। मैं पूछूँगा इन बातों का प्रायश्चित करने के लिए गुरु के पास कौन जाता है? धर्म को बाह्य मत बनाओ। धर्म को अपनी अन्तरात्मा के साथ जोड़ो क्योंकि धर्म भीतर का अनुष्ठान है। धर्म हमारे जीवन की देहरी पर प्रेम का जलता हुआ चिराग है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे सारे मार्ग अपनाओ जिससे हमारे विकार समाप्त हों और चित्त को शान्ति उपलब्ध हो।

मेरा अनुभव यही है कि भीतर होने का अभ्यास ध्यान से ही होता है। ध्यान बहुत ऊँची या टेढ़ी वस्तु नहीं है। ध्यान अत्यन्त सरल है। तपस्या करो तो भूखे रहना होता है, दान करो तो धन खर्चना पड़ता है, लेकिन ध्यान में यह सब कुछ नहीं करना पड़ता है। ध्यान तो सिर्फ़ भीतर होने का अभ्यास है, भीतर का प्रमोद भाव है, भीतर की चेतना के प्रति सतर्कता और सजगता है। यह अन्तर्यात्रा है। बाहर से भीतर की ओर मुड़ना है। बिना भीतर मुड़े, बिना अन्तर्यात्रा किए, बिना भीतर की बैठक में दस्तक दिए आज तक कौन उपलब्ध हो पाया है! चौदह वर्ष तक महावीर जंगलों में क्या करते रहे? क्या कपड़े बुनते रहे या पात्रों को रंगते रहे? नहीं, चौदह वर्षों तक भीतर उतरने का प्रयास करते रहे। अन्तर्मन को जीतते रहे। भीतर को जीतकर ही वे उपलब्ध हो सके। धर्म आखिर मनुष्य को उसकी अन्तरात्मा ही देना चाहता है। और अन्तरात्मा हमारे भीतर ही है। तभी तो कबीर कहते हैं- कस्तूरी कुण्डल बसे- नाभि में ही कस्तूरी रहती है। हमारे कुण्डल में हमारी सुरभि, हमारा प्रकाश, हमारा स्वाद रहता है। इसलिए ध्यान ही सबसे सुगम मार्ग है जिसमें न कहीं जाना है, न झुकना है, न तपस्या करके स्वयं को सुखाना है।

जहाँ बैठे हो वहीं अपने भीतर होने में, साक्षीत्व में, सजगता में, तथाता में होने का अभ्यास ही ध्यान है। जहाँ बैठकर आँखें बन्द कीं, वहीं अन्तर्भाव में प्रवेश हो गया, ध्यान में चले गए। जीवन में जो भी चमत्कार होगा वह ध्यान से ही घटित होगा। मुझे इन वर्षों में ध्यान से इतना उपलब्ध हुआ, जितना पिछले पन्द्रह वर्षों में क्रिया-काण्डों से उपलब्ध न कर पाया। अब तो लगता है कि जो भी होता है ध्यानमय होता है। जीवन ध्यानमय हो जाए, तो आत्मानुभव सहज है। जहाँ हो जिस स्थिति में हो, जिस वेश में हो, जिस नाम में हो वह स्थान मंदिर होगा। तब मंदिर किसी स्थान विशेष पर न होंगे, तब तीर्थ किसी नदिया किनारे पर न होंगे वरन् स्वयं के भीतर ही काबा-कर्बला, कैलास-काशी होंगे। केवल भीतर उतरना है, स्वयं को आत्मसात् करना है - यही धर्म है, ध्यान है। ध्यान ही सभी धर्मों का भविष्य है।

◆ *प्रभावना क्या है? क्या माइक पर अपना नाम घोषित करवाकर कुछ वस्तुएँ बाँट देना प्रभावना हैं?*

इस सदी में कार्ल गुस्ताव जुंग ने सिनक्रॉनिसिटी की जो थ्योरी दी, पच्चीस सौ



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने वही सिद्धांत प्रभावना के रूप में प्रतिपादित किया। जो अर्थ प्रभावना का है वही अर्थ सिनक्रॉनिसिटी का है। प्रभावना दी नहीं जाती, प्रभावना होती है। सिनक्रॉनिसिटी का अर्थ है इधर वीणा बजी और उधर हृदय झंकृत हुआ, इधर सूरज उगा, उधर फूल खिला - यही प्रभावना है। इधर मैं आया, आने के साथ ही आपके हृदय के तार मुझसे जुड़ गए, यह प्रभावना हुई। आत्मा से आत्मा के तार जुड़ गए। इसलिए इधर तार झंकृत होता है, उधर कोई हृदय नाचने लगता है। इधर वीतरागता का इकतारा बजता है, उधर कोई मीरा या सूरदास करताल बजाने लगते हैं। सूरज उगा और कमल खिला यह प्रभावना है। सूरज उगा पर कमल न खिल पाया, तो सूरज का उगना क्या हुआ? तानसेन दीप-राग छेड़े और दीपक न जलें? मल्हार गाएँ और बादल न बरसे? तब उनका राग छेड़ना न छेड़ना जैसा ही रहा।

प्रभावना तो तब प्रभावित करती है, जब आत्मा से आत्मा झंकृत हो जाए। तुम रुपये-पैसे की प्रभावना (वितरण) भी करो लेकिन जो रुपये तुम सत्संग या पूजा में शरीक होने वाले हजार लोगों को बाँटना चाहते हो, उनमें से पता करो कि किसका बेटा स्कूल की फीस जमा नहीं कर पाया या किसके घर आहार का प्रबंध नहीं हो पा रहा, वह धन तुम उनको दो, तुम्हारी ओर से यह सच्ची प्रभावना हो जाएगी। धर्म के मूलभूत रूप के अनुसार प्रभावना हो जाएगी। मैं पुनः कहूँगा हम श्रावक-समाज पर, मानव-मंदिर पर ध्यान दें। ये सभी ट्रस्ट, संस्थान जो नामपट्ट के लिए सैकड़ों-हजारों रुपये लगा रहे हैं, वे इस मानव जाति के लिए जागरूक हों और जितनी अधिक सेवा कर सकें शिक्षा-चिकित्सा के लिए जरूर करें।

मानव स्वयं एक मंदिर है, तीर्थ रूप है धरती सारी,
मूरत प्रभु की सभी ठौर है, अन्तरदृष्टि खुले हमारी।

इसी मंगलकामना के साथ कि सभी की अन्तर-दृष्टि खुले, अन्तर में बैठे हुए प्रभु को प्रणाम!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# भीतर जगाएँ बोध की बाती

इतिहास में बद्धरेक नामक हाथी की एक बहुत प्यारी-सी घटना उल्लिखित है। बद्धरेक अपने समय का अत्यन्त वीर-योद्धा था, जिसके बलबूते पर सम्राट ने सैकड़ों युद्धों में विजय प्राप्त की थी। उस हाथी के शौर्य और पराक्रम की गाथा उसके प्रशंसक ही नहीं गाते थे, शत्रु भी बद्धरेक की यशोगाथा को बड़े चाव से कहते। अगर युद्ध पराजय की ओर बढ़ रहा हो और उसमें केवल बद्धरेक को उतार दिया जाये तो युद्ध की काया ही पलट जाती।

एक समय आया जब बद्धरेक बूढ़ा हो गया। पानी की तलाश में वह जंगल की ओर बढ़ा। बुढ़ापा तो घर कर ही चुका था, सो आँखें भी कमज़ोर हो गईं। उसके हाथ-पाँवों में ज़ोर नहीं रहा, दाँत भी गिर चुके थे। उसकी दशा बिल्कुल बूढ़े आदमी की-सी हो गई थी। वह गया तो था पानी की तलाश में, लेकिन पानी न मिल पाया। वह दलदल में जा फँसा। उसने जैसे-जैसे दलदल से बाहर निकलने का प्रयास किया, वह और अधिक दलदल में धँसता चला गया। आस-पास के ग्राम-नगर में समाचार फैल गया कि बद्धरेक दलदल में फँस गया है।

समाचार पाकर सम्राट भी वहाँ पहुँचा। उसने सेना को आदेश दे दिया कि वह अविलम्ब बद्धरेक को दलदल से बाहर निकाले। सेना इस कार्य में तत्परता से जुट गई। अगर इतना बड़ा योद्धा, इतनी बुरी मौत मरे तो यह देश व प्रदेश के लिए कलंक की बात है। सेना ने बद्धरेक को निकालने के बहुतेरे प्रयास किये, पर उसे निकाला न



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जा सका। जब सारे ही प्रयास विफल हो गये तो सम्राट को अपने वृद्ध महावत की याद आई। उस महावत की, जिसने बद्धरेक को पोषित-संस्कारित किया था।

अपने पुराने साथी बद्धरेक को इस तरह दलदल में फँसे देखकर महावत की आँखें भर आईं। महावत ने सम्राट से कहा- महाराज, आप सभी सैनिकों को हटा दीजिए। मैं बद्धरेक की नस-नस से वाक़िफ़ हूँ। बद्धरेक अभी बाहर आ जायेगा। आप केवल इतना भर कीजिए कि युद्ध के बिगुल बजा दीजिए।

ऐसा ही हुआ। बद्धरेक का सोया वीरत्व जाग उठा। उसका आत्म-पौरुष उद्दीप्त हो उठा। वह आत्म-शक्ति को एकत्र कर चिंघाड़ के साथ बाहर आ गया।

बद्धरेक तो एक हाथी था। चौपाया जानवर! भले ही कितना सघन दलदल क्यों न हो, पर अगर हमारी अन्तरात्मा चैतन्य हो जाये, तो वह दलदल से बाहर आ ही जायेगा। यहाँ भी तो जीवन-बोध की भेरियाँ, दुंदुभियाँ, नगाड़े बज रहे हैं, मगर इंसान न जाने माया के किस गहन अंधकार में फँसा है कि चाहकर भी वह बाहर नहीं निकल पाता। एक जानवर का दलदल से बाहर आना सहज लग रहा है, मगर इंसान को अगर दलदल से बाहर लाना हो तो बहुत कठिन है। जानवरों में कम-से-कम इतनी तो समझ है कि वह दलदल में फँसा है, पर इंसान तो जानते हुए भी अनजान बना हुआ है।

आदमी दलदल में फँसा है- वैर-विरोध के दलदल में, काम-भोग के दलदल में, नामगिरी और दादागिरी के दलदल में। दलदल कई तरह के हैं, कई रूप के हैं। कई तो ऐसे सुहावने हैं कि उन्हें दलदल कहो, तो आदमी काटने को दौड़ता है। अब अगर दलदल लगता भी है तो यही कि कोई दलदल में है, कोई और गलती में है, कोई और कीचड़ में है। खुद को तो आदमी अमृत के सरोवर में ही डूबा हुआ देखता है जबकि औरों को कीचड़ के गड्ढे में। अकबर जैसे लोग तभी तो बीरबल की खिल्ली उड़ाते हैं। अकबर ने बीरबल से कहा- मैंने सपना देखा और सपने में देखा कि मैं तो अमृत के कुएँ में गिरा हुआ हूँ और तुम कीचड़ के कुएँ में गिरे हुए हो। बीरबल ने कहा-सम्राट आपने जो सपना देखा, वह सौ फीसदी सही है, पर जहाँ आपका सपना समाप्त होता है, वहीं मेरा सपना शुरू होता है। सपने में मैंने देखा कि कुएँ से निकलने पर आप मुझे चाट रहे थे और मैं आपको!

सभी एक-दूसरे को चाट रहे हैं, चूम रहे हैं। अमृत होकर भी कीचड़ को चाट रहे हैं, खुद में सुख का सागर होते हुए भी किसी के होंठ चूम रहे हैं- यह मानकर कि यही सुख है। देह-भाव इतना हावी हो गया है कि विदेह-भाव मानो हवा हो गया हो। मुझे नहीं पता कि मैं हजारों साल पहले क्या था, लेकिन एक बात तय है कि अगर बद्धरेक एक जानवर होकर भी बाहर आ सकता है तो हम एक बुद्धिमान होकर



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दलदल से बाहर क्यों नहीं आ सकते? मनुष्य बँधा हुआ है। उसे किसी और ने नहीं बाँधा है, वह खुद बँधा है। किसी दूसरे को बाँधने का अर्थ ही हुआ कि हम स्वयं बँध गये। जब किसी नौकर को घर में रखा तो तुम स्वयं बँध गये। अगर एक दिन नौकर न आये तो अपने हाथ से थाली भी न धुल पायेगी।

बायजीत के जीवन की एक प्यारी-सी घटना है। कहते हैं कि बायजीत अपने शिष्यों को साथ लेकर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति एक बैल लेकर जा रहा था। वह व्यक्ति रस्सी से बँधे बैल को अपने नियंत्रण में किये हुआ था।

बायजीत ने अपने शिष्यों से पूछा- बताओ इन दोनों में से मालिक कौन है? शिष्यों ने कहा-इसमें पूछने की क्या बात है स्वामी! यह व्यक्ति जिसने बैल को रस्सी से बाँध रखा है, वही इसका मालिक है। बायजीत ने झट से अपनी जेब से चाकू निकाला और उससे रस्सी को काट दिया। तब बायजीत ने पूछा- बताओ, अब कौन किसके पीछे जा रहा है? आदमी के पीछे बैल या बैल के पीछे आदमी! मालिक के पीछे गुलाम या गुलाम के पीछे मालिक? बायजीत ने कहा- बैल के पीछे आदमी दौड़ रहा है, फिर आदमी मालिक कैसे हुआ? असली मालिक तो बैल है, जिसके पीछे आदमी गुलाम की तरह दौड़ रहा है। मालिक की तुलना में बैल स्वतंत्र है। मनुष्य अपने आपको इतना गुलाम बना चुका है, इतना बद्धरेक कर चुका है कि आश्रित हुए बिना जीना, उसे जीना ही नहीं लगता।

हम सोचते हैं कि देश आज़ाद हो गया तो गुलामी मिट गई, मगर आदमी की गुलामियाँ बड़ी विचित्र ढंग की होती हैं। एक आदमी तंबाकू खाता है, तो प्रातः जब तक वह तंबाकू सेवन न कर ले, तब तक शौच-क्रिया भी नहीं कर पाता। वह तंबाकू का गुलाम है। एक व्यक्ति अगर संत-जीवन स्वीकार कर चुका है, फिर भी नशे-पते का सेवन कर रहा है। हिन्दू-संतों में बीड़ी-सिगरेट, जर्दा, भाँग-चिलम तो आम बात है और अगर मान लो किसी धर्म में नशे-पते की चीजें भी मना है, तो लोग तम्बाकू सूँघना ही शुरू कर देंगे। तम्बाकू खाओ या सूँघो, तुम बेहोशी में जा रहे हो, दलदल से बाहर आने का तो यह अभियान है ही नहीं! हम अपनी बुराइयों के ही गुलाम हुए। हमारे बंधन, हमारी परतंत्रताएँ अलग-अलग बाना पहन चुकी हैं। ऐसे बाने कि जिनमें आत्मा के घाव दब चुके हैं। कृपा कर अपनी अन्तर-आत्मा और अन्तरमन की पीड़ा को समझने का प्रयास करो। अपनी परतन्त्रताओं को, अपने दलदल को पहचानो।

नशा तो बद्धरेकता का एक नमूना है। ऐसे ही धन है। लगा है आदमी दिन-रात धन के पीछे। सवेरे से लेकर रात तक, बारह बजे तक। सवेरे उठने से लेकर रात सोने तक एक ही धन की चकरी चलती रहती है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काम, बद्धरेकता का तीसरा रूप है। कामुकता और विलासिता से बढ़कर बद्धरेकता का और कोई रूप नहीं है। काम के दलदल में उलझा व्यक्ति विधर्मी है, कर्तव्यबोध से च्युत है, मर्यादाओं से विरत है। बाली अपने भाई की पत्नी, सुग्रीव की पत्नी रूमा को हर लेता है। सुग्रीव बाली को मारकर उसकी पत्नी तारा से विवाह रच लेता है। विलासिताएँ भटकाती है, कामुकताएँ अबोध बच्चे-सी हरकतें करवाती हैं। बद्धरेकताओं को कौन पहचाने?

मनुष्य आबद्ध है। मनुष्य किसी को पत्नी बनाता है और खुद उसका पति बनता है, पर वह पति कम, पत्नी अधिक उसका पति बन जाती है। कहने भर को कोई गुलाम हुआ, पर हक़ीक़त में आदमी खुद उसका गुलाम हो गया। जिसके बग़ैर काम न चले, वह हमारा स्वामी हो गया। जिसकी बात हमें माननी पड़े, वह हमारा पति हो गया।

वस्तु और व्यक्ति को अपने में बाँधकर व्यक्ति खुद ही बँध जाता है। बंधन का यह मनोविज्ञान है। बाहर से व्यक्ति बँधता है और भीतर से मन बँधता है। यह बन्धन ही व्यक्ति की ग्रन्थि है। किसी और से स्वयं का बंध जाना ही परिग्रह की बुनियाद है। परिग्रह यानि पकड़। जितनी तेज पकड़, उतने ही तुम परिग्रही! जितनी गहरी मूर्च्छा, उतने ही तुम दलदल में!

जिन राहों पर तुम चलते रहे हो, वे राहें तुम्हें सत्य के, लक्ष्य के, मुक्ति के किनारे नहीं दे पा रही हैं। वे दलदल में ले जा रही हैं। आखिर क्यों? लंगर खोलो तो ही यात्रा शुरू हो, यात्रा पूर्ण हो। अन्यथा नाव वहीं-की-वहीं खड़ी रहेगी, पड़ी रहेगी। दलदल में थे, दलदल में बने रहेंगे- मैं, आप, सब! वे सब, जो अपनी चेतना की स्थिति को बदल नहीं पा रहे हैं।

बद्धरेक! एक वह जो बँधा रहा। पर बद्धरेक जगा, तो बद्धरेक हुआ। बद्धरेक यानि एक वह जो बुद्ध हुआ, बोध को उपलब्ध हुआ। बद्धरेक तो सारा जगत है, बद्धरेक तो वही होता है, जो दलदल से बाहर आने का साहस कर ही बैठता है। मेरा सम्बोधन बस आपके साहस को चुनौती है। बस, तुम्हारा निजत्व जग जाये, बुद्धत्व जग जाये, बंधन की आत्मा समझ में आ जाये। जीवन के दायरे व बंधन बहुत सुदृढ़ हैं। मैं अंग्रेजों की उस परतंत्रता की बात नहीं करता और न ही कारागार में बँधे, बेड़ियों, हथकड़ियों की बात करता हूँ। मैं तो उन बंधनों की बात कर रहा हूँ, जो हमें बंधन के रूप में दिखाई ही नहीं देते। लोहे की जंजीरों को एक बार तोड़ा भी जा सकता है, पर मैं तो उन रेशमी धागों की बात कर रहा हूँ, जिनके वशीभूत होकर व्यक्ति अपने प्रेम और अपनी आत्मीयता को संकीर्ण कर डालता है। मैं उन बंधनों की बात कर रहा हूँ, जिनके रहते हर कोई अपने में मालिक की भावना पाले हुए है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओह! माया की गाँठें कितनी मजबूत हैं कि आदमी जानते-बूझते हुए भी गाँठों के बाहर झाँक नहीं पा रहा है।

जब आर्द्रकुमार नाम का व्यक्ति संन्यास लेने के लिए आतुर होता है तो वह संकल्प कर ही लेता है, वह संन्यास ले लेगा। अगले दिन उसका बेटा माँ के पास पहुँचता है। वह देखता है कि उसकी माँ चरखे पर सूत कात रही है। तब वह कहता है - माँ, तुम यह झौंपड़पट्टी वाला काम करती हो?

माँ ने कहा- वत्स! कल तुम्हारे पिता संन्यासी हो जाएँगे। उसके बाद आजीविका के लिए सूत ही कातना पड़ेगा।

बेटे ने काता हुआ सूत लिया और सोये हुए पिता के पाँवों में बांध दिया। पिता के संकल्प धरे-के-धरे रह गये। पाँवों में पड़े चौदह धागों को देखकर मन में संसार में रहने की अभिलाषा जाग उठी। वे पूरे चौदह साल तक संसार में रहे, तब संन्यास ग्रहण किया। संन्यास लेने के बाद वे जंगल की तरफ चले गये। वन-प्रवेश से पूर्व एक हाथी ने आर्द्रकुमार को देख लिया। वह उनकी तरफ बढ़ा। हाथी पगला उठा।

पागल हाथी आर्द्रकुमार के पास पहुँचा। उस हाथी ने संत को प्रणाम किया और जंगल की ओर चला गया। लोगों को आश्चर्य हुआ कि हाथी, जिसने इस संत को देखकर, इन मज़बूत लौह जंजीरों को तोड़ डाला, संत के पास आकर शांत हो गया। वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने आर्द्रकुमार से इसकी चर्चा की तो संत ने कहा- तुम आश्चर्य कर रहे हो कि हाथी ने ये लोहे की जंजीर कैसे तोड़ दी? पर मैं धन्यवाद देता हूँ इस हाथी को, जिसने लोहे की जंजीरों को तोड़ने में दो मिनट लगाये। मैं तो रेशम के धागों को तोड़ने में चौदह साल लगा बैठा। मैं तो अब भी आश्वस्त नहीं हूँ कि उन चौदह धागों को पूरी तरह तोड़ पाया हूँ, क्योंकि इतनी दूर जंगल में रहकर भी मेरे मन में संसार की प्रतिच्छाया उठ रही है।

लोहे की जंजीरों को तोड़ना सरल है, जबकि मोहमाया के सूक्ष्म बंधनों को तोड़ना कठिन है। बद्धरेकताओं को पार लगाना कठिन है। होगा कोई विरला, होगी कोई महान् आत्मा, सिद्धत्व की आभा, किसी में कीचड़ से बाहर अंकुरित हो जाने का संकल्प, तभी बंधन टूट सकते हैं। कीचड़ से कमल बाहर आ जाये तभी उसकी सार्थकता है। जब तक कमल की तरह निर्लिप्तता है, हजार समस्याएँ आ जाएँ, हजार त्रासदियों से गुजरना पड़े, मगर कोई भी त्रासदी त्रासदी नहीं है। कमल की पंखुड़ियाँ कीचड़ से पलायन नहीं कर रही हैं, मगर फिर भी उससे ऊपर उससे अलग। संन्यास का भी सीधा-सा अर्थ यही है कि कीचड़ में हैं, मगर कीचड़ से ऊपर। संसार में है, लेकिन फिर भी संसार से बाहर। संसार में रहकर भी संसार का साक्षी बने रहना,


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार के प्रति तटस्थ बने रहना अध्यात्म को स्वयं में सदाबहार जीना है। सबसे प्यार हो, महत् का सम्मान हो, मुक्ति के मनोभाव हों- बस ये तीन सूत्र मेरी ओर से मेरे तीन संदेश समझो।

बद्धरेक मुक्त हुआ, इसलिए कि मुक्ति की कामना पहले से ही प्रबल थी। महावत बाहर लाने में निमित्त बना। नगाड़ों ने आत्म-शौर्य को और जगाया। तुम पत्नी से नहीं, वरन् पत्नी के प्रति रहने वाली कामुकता से बाहर आओ। जंगलों में नहीं, शहर में रहकर भीड़-भाड़ के बीच में अपने एकत्व को जागरूक बनाये रखो। खुद को पहचानो, खुद की स्थिति को पहचानो, मुक्ति की कामना लिए खुद के संकल्पों को जगाओ, आत्मविश्वास के मजबूत पाँवों पर स्वयं को स्थिर करो और फिर गुजर चलो स्वयं से, जगत् से, हर स्थिति से। सजग सहजता ही संबोधि की आधारशिला है, जीवन-जगत् के बीच संतुलित शांत जीवन जीने की व्यावहारिकता है।

ऐसा नहीं कि जीवन में सत्य की, दिशा-बोध की भेरियाँ या नगाड़े बजाने वाले लोग नहीं मिलते। मिलते हैं पर सौभाग्य से! जन्म-जन्म के पुण्य-योग से मिलते हैं। पहली बात तो यही है कि दिशा-बोध के नगाड़े बजाने वाले लोग भी मूर्च्छित हैं। वे भी उसी माया की गाँठ में जकड़े हुए हैं। ऐसा अवसर, अपूर्व अवसर सौभाग्य से कभी-कभी ही आता है, जब निज से जुड़े किसी बूढ़े महावत की तरह सद्गुरु का सहयोग मिलता है। कोई सम्बुद्ध सद्गुरु का सामीप्य व सान्निध्य मिल जाए तो हमारे दृष्टिकोणों का रूपांतरण हो जाए। दृष्टि बदले तो ही हमारी सृष्टि बदलेगी। विकृत दृष्टि से ही विकृत सृष्टि निर्मित-परिवर्तित होगी।

बद्धरेक हाथी को निकालने में हजारों सैनिक लग जाए, पर वह तो उस वृद्ध महावत से ही बाहर निकलेगा, जो उसकी चेतना की कमज़ोरी और उसकी विशेषता को पहचानता है। हमारी सोच यह होती है कि गुरु होना ही चाहिए, चाहे उससे आत्मा बदले या न बदले। गुरु है, पर वह आरोपित है। अपने पूर्वजों के वंश की तरह गुरुओं का भी वंश चलता है। जीवन से कुछ मिला या न मिला, उनमें चेतना का रूपांतरण हुआ या न हुआ, कोई संबोधि का चिराग जला या न जला, इस पर कोई ध्यान नहीं देता, इससे किसी को कोई सरोकार नहीं। हमारे अंधाधुंध चल रहे विकल्प शांत होते हैं या नहीं होते, मन के कषाय तिरोहित होते हैं या नहीं होते, अहंकार का आभामंडल छिटकता है या नहीं छिटकता, इससे कुछ भी लेना-देना नहीं। कहीं कोई मुक्ति घटित हो रही है या नहीं, कहीं कोई प्रेम, शांति और पवित्रता घटित हो रही है या नहीं, इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है, बस भेड़-धसान है। हमें तो बस गुरु चाहिये, फिर चाहे वह गुरुघंटाल हो।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुनिया जाए, जाने दो उस मार्ग पर। मुझे कोई ऐतराज नहीं, पर इतना ज़रूर करो कि कुएँ में गिरते समय आँखें खुली रखना, ताकि मरते समय, अंधकूप में गिरते समय यह पछतावा न रहे कि मै कहाँ आकर गिर गया। जिस दिन यह बोध हो गया कि किसी कुएँ में गिर गया हूँ, अगर भीतर के नाद का नगाड़ा सुनाई दे जाए तो साहस बटोर लेना, हिम्मत जुटा लेना, बाहर आ ही जाओगे, किनारा मिल ही जाएगा। भीतर की रोशनी उजागर हो ही जाएगी।

बद्धरेक बाहर निकला, हम भी पार हो सकते हैं, पर इसके लिए यह जानना होगा कि हम भी दलदल में हैं। जब तक इसका बोध नहीं होगा, तब तक धर्म व अध्यात्म के सारे द्वार आपके लिए बन्द हैं। तब आपके जीवन में अध्यात्म की कोई दस्तक नहीं हो पाएगी, चेतना का चिराग जल नहीं पाएगा। ऐसा नहीं है कि आदमी को ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो है, लेकिन मूर्च्छा इतनी गहरी है कि आदमी के लिए ज्ञान केवल ऊपर-ऊपर रह जाता है, उतना गहराई तक नहीं पहुँच पाता, जितनी गहराई तक हमारी मूर्च्छा, तन्द्रा है। जब तक इतनी गहराई तक हमारा आत्म-बोध नहीं पहुँच पाता, तब तक भले ही आदमी संन्यास ले ले और गुफा में रह ले, उसे संसार की याद आयेगी। वह मन की खटपट में उलझा रहेगा।

अध्यात्म के मायने हैं आत्मा का सामीप्य। पर आत्मा की करीबी तो तब है, जब उस मन के प्रति तटस्थ और वीतराग हो जाओ, जो दिन-रात चौराहे पर वाहनों की तरह दौड़ रहा है। सपनों के दीप जलाने की चेष्टा करता रहता है। बीते का चिन्तन करता रहता है। यह सब भटकाव है। यह भटकाव ही मनुष्य की बद्धरेकता है।

भव भ्रमण जारी है। मन-ही-मन भ्रमण हो रहा है। हम जन्म-जन्म से भटक रहे हैं- बद्धरेकताओं से जकड़े रहे हैं। अपने मन को देखो तो लगेगा कि चौरासी लाख जीव-योनियाँ हमारे मन की योनि के सामने निरी कुबड़ी है। मन वह योनि है, जो प्रतिपल एक-दूसरे के विरुद्ध विकल्पों को जन्म देता रहता है। किन अंडों में से ये विचार फूटते हैं, अज्ञात है।

मन की स्थितियों को समझो, उनसे भागो मत, उन्हें स्वीकारो। उन्हें भोगो मत, उनके प्रति तटस्थ हो जाओ। मन के कहे चलोगे, तो ही कर्म-धारा में उलझे रहोगे। कर्म के काँटे उगते रहेंगे, उलझाते रहेंगे। तुम उन्हें काट तो पाओगे नहीं और दृढ़ करते जाओगे। कर्म के काँटे जन्म-जन्म से इतने सिंचित होते रहे हैं कि अब वे लोहे की कीलें हो चुकी हैं। जीवन लोहे की कीलों पर, कांटों की सेज पर चलना-बैठना-सोना है। सम्भावना प्रबल है कि ये कीलें भाले और फरसे बन जाए। अच्छा होगा हम अपने जन्म-जन्मान्तर का इतिहास बदलें। जगो, जगना ही, सजगता ही मूल मंत्र है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सजगता ही विरक्ति की सही परिभाषा बन सकती है। प्रेरणा दे-देकर, उकसा-उकसा कर, चने के झाड़ पर चढ़ा-चढ़ाकर कब तक हम लोगों से उनके पाप छुड़ाते रहेंगे। छोड़ने से छुटकारा नहीं होता। छूटे तो ही छुटकारा सम्भव है। छूटे तो ही मुक्ति का मनोविज्ञान समझ में आये। छूटे तो ही मुक्ति का अनन्त आकाश आत्मसात् होगा। छोड़-छोड़कर तो छूट नहीं पाएगा। गुरुत्वाकर्षण बाँधे रखता है, बार-बार खींचता रहता है। वस्तु, व्यक्ति या और किसी को छोड़ भी दिया तो क्या, गुरुत्वाकर्षण तो बराबर खींचे रहेगा। गुरुत्वाकर्षण, मूर्च्छा, पकड़ ढीली हो, तो ही कोई बात बने। जन्म-जन्म की बिगड़ी सुधरे।

पथ भूल न जाना पथिक कहीं!
पथ में काँटे तो होंगे ही,
दूर्वादल, सरिता, सर, होंगे।
सुन्दर गिरि, वन वापी होंगी,
सुन्दर-सुन्दर निर्झर होंगे।
सुन्दरता की मृग-तृष्णा में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं!

जब कठिन कर्म-पगडंडी पर
राही का मन उन्मुख होगा।
जब सपने सब मिट जाएँगे
कर्तव्य- मार्ग सम्मुख होगा,
तब अपनी प्रथम विफलता में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं!

अपने भी, विमुख, पराये, बन,
आँखों के सम्मुख आएँगे।
पग-पग पर घोर निराशा के,
काले बादल छा जाएँगे।
तब अपने एकाकीपन में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं!



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्तव्य-प्रेम की उलझन में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं!
पल भर भी पड़ असमंजस में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं!

अगर कदम बढ़ा लिए, मुक्ति के मार्ग पर आरूढ़ हो ही गए, तो पथ की बाधाओं की क्या परवाह! मृत्यु से बढ़कर तो कुछ हो ही नहीं सकता। आखिर, एक-न-एक दिन तो काया गिरनी ही है, सौभाग्य! अगर मुक्ति के लिए, आत्म्-स्वतन्त्रता के लिए काया गिरी तो भी सौभाग्य! मातृभूमि पर लाखों लोगों ने बलिदानी दी है। अपने भीतर के महाभारत के चक्रव्यूह से मुक्त होने के लिए अगर तुम्हें अभिमन्यु होना पड़े, तो माँ भारती की महान कृपा!

आप सब यों काफी समझदार और प्रबुद्ध हैं। अपने ज्ञान का उपयोग तर्क-वितर्क या विचार-विमर्श में मत करो। ज्ञान जीने के लिए है। ज्ञान वाद-विवाद के लिए नहीं, जीने के लिए है। ज्ञान और ज्ञान में फ़र्क़ है एक ज्ञान वह, जो औरों को पछाड़े। एक ज्ञान वह, जो खुद के साथ औरों को भी उठाए। तुम आगे बढ़ो, जमाना तुम्हारे साथ होगा। न भी हो, तो भी, एकला चलो रे! ज्ञान को मौन जी लेना, ज्ञान से स्वयं को सार्थक कर लेना है।

मनुष्य की यह कैसी विडम्बना है कि हम अपने आपको इतना बड़ा ज्ञानी कहते हैं, पर हमारे भीतर कितनी अविद्या छिपी पड़ी है! मेरे संबोधन तो महज एक सत्य-बोध हैं, दिशा-बोध हैं। ज्ञान द्वारा, सजग दृष्टि द्वारा भीतर के अज्ञान को पहचानने के लिए है। जिस दिन आदमी को लगेगा कि मैं किस अज्ञान से भटकता रहा, तब उसके जीवन में ज्ञान की रोशनी प्रकट होगी। तब एक ज्योतिकलश छलकेगा। मेरे देखे, अज्ञान का बोध ही ज्ञान के जन्म का आधार बनता है।

व्यक्ति के पास ज्ञान के नाम पर ज्ञान नहीं, पांडित्य भर होता है। ज्ञान के रूप में प्रज्ञा और बोध होना चाहिए, पांडित्य का पाषाणी भार नहीं। भले ही कोई गधा अपनी पीठ पर चंदन को लादे हुए घूमता रहे, पर वह चंदन उसके किसी काम का नहीं। उसके लिए तो चन्दन और मिट्टी एक समान है। चाहे उसकी पीठ पर चंदन लादा जाये या मिट्टी कोई अन्तर नहीं। गधे के लिए तो दोनों भार हैं। गधा तो यही चाहता है कि यह भार जितना जल्दी उतरे, उतना ही अच्छा।

आज दोपहर में एक सज्जन मुझसे दो-चार शब्दों के अर्थ को लेकर चर्चा कर रहे थे। मैं उनकी चेतना को समझ रहा था, इसीलिए मैंने उनसे कहा कि आप इन शब्दों की मारामारी को छोड़िए। शब्दों को हम बहुत समझ चुके और समझ-


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझकर पंडित हो गए हैं। शब्द महज माध्यम हैं, शब्दातीत तक जाओ। शब्द को नहीं, अर्थ को जीओ। निर्वितर्क से निष्कर्ष तक पहुँचो। बुद्धि की खुजलाहट भर से हृदय में नहीं उतर सकते। ज्ञान का बीज अन्तरहृदय में अंकुरित हो, तो ही ज्ञान, जीवन का सच्चा मित्र और सही सहचर साबित हो सकेगा।

अपनी अन्तर-आत्मा को पहचानो। अन्तर-गुहा में प्रवेश करो। उस तह तक पहुँचो कि जिससे हमारा क्रोध, कषाय, विकार, अहंकार मिट सके। हमें ज्ञान के वे सारे सूत्र और मार्ग स्वीकार्य हों जो हमारी चेतना को बदल दे। अगर हम ज्ञान को आजीविका का साधन ही मानते फिरेंगे, तो हमारे लिए ज्ञान केवल औरों को देने भर के लिए होगा, जीने के लिए नहीं। तब हमारा रूपक उस कड़छी की तरह होगा, जो हलवे में जाकर भी हलवे से कोरा रहता है।

वह ज्ञान कैसा ज्ञान जो हमें अज्ञान की पहचान ही नहीं करवाए। वह विचार भी कैसा विचार जो हमारे जीवन में विराग को उत्पन्न न कर दे। वह बोध भी कैसा बोध जो हमारे बंधनों को शिथिल न कर दे।

जीवन के रास्तों से सभी लोग गुजरते हैं। बुद्ध और महावीर भी उसी मार्ग से गुजरे थे और हम भी उसी मार्ग से गुजर रहे हैं। सबका जन्म-स्थल माँ की कोख है। उसी माँ की कोख से शंकराचार्य पैदा हुए, उसी से मीरां-मलूक, कृष्ण-कबीर, गुरजिएफ-गोरख, ईसा-ओशो, शांतिनाथ-सुकरात ने जन्म लिया। हम भले ही उन्हें तीर्थकर, महापुरुष या अवतार कह लें, पर धरती पर साकार होने के लिए सिवा माँ की कोख के और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। सभी जन्म लेते हैं, पीड़ाओं को सहते हैं, बाधाओं से गुजरते हैं, मृत्यु की पदचाप सुनते हैं। भले ही वे महात्मा-परमात्मा ही क्यों न हो, कोई भी व्यक्ति यहाँ अपवाद नहीं है। कोई व्यक्ति सोये-सोये जीवन की राहों से गुजरता है और कोई जागकर। सजग जीकर ही जीवन के निष्कर्षों को उपलब्ध किया जाता है। निष्कर्ष ही उपलब्धि है। निष्कर्ष जीवन के सत्यों का निचोड़ है। जो यह उपलब्ध कर लेता है, वही जीवन की पाठशाला में उत्तीर्ण हो पाता है। मूर्च्छित के लिए मुक्ति नहीं है, अमूर्च्छा ही मुक्ति है। मूर्च्छित व्यक्ति निर्वाण की पाठशाला में असफल-अनुत्तीर्ण होता रहता है। असफल व्यक्ति बार-बार इस संसार में लौटा दिया जाएगा। इसी का नाम पुनर्जन्म है, यही पुनर्जन्म का रहस्य है। जीवन के सही-सम्यक् निष्कर्षों को उपलब्ध कर लेने का नाम ही सम्यक्-ज्ञान है, संबोधि है।

संबोधि यानि बोध पा लिया। जब हम अपने जीवन के प्रति जागरूक हो जाते हैं, तब ऐसा संयोग मिल ही जाता है कि कोई महावत दुंदुभी बजा देता है। देरी पार लगने में नहीं, संयोग बैठने भर में देरी है। अध्यात्म के मार्ग में, मुक्ति के मार्ग में,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर के पल्लवन में धीरज और शांति चाहिए। मौन प्रतीक्षा चाहिए। हड़बड़ में गड़बड़ है। मौन को घटित हो लेने दो। शून्य को छा ही लेने दो। शान्ति के आनन्द-सरोवर बन ही जाओ। जो होगा, अंधकार के प्रति भी वीतद्वेष हो चलो। प्रकाश फूटेगा, सूरज उगेगा। अपने आपको जीवन को पढ़ने में लगाओ। जितना ज्यादा आदमी जीवन और जगत को देखेगा, समझेगा, निष्कर्ष तक पहुँचेगा, उसके भीतर उतरनी ही अधिक अध्यात्म की प्यास, अध्यात्म की लौ प्रकट व संवर्द्धित होगी। जीवन के वास्तविक मूल्यों के प्रति वफादारी जग जाए तो मुक्ति-की-नेमत, मुक्ति-का-वैभव आत्मसात् है ही।

जब तक प्यास नहीं है, तब भले कंठ तक पानी क्यों न आए, पानी निर्मूल्य है। प्यासी माटी पर बादल बरसे, तो ही माटी सोना उगलेगी। जिस दिन प्यास जग गई, तब एक बूँद भी अनमोल हो जाएगी। उसी प्यास, उसी आन्तरिक अभीप्सा को जगाने के लिए मेरे संबोधन हैं। कुछ समय के लिए आँख बंद करे, भीतर उतरें, देखें, अपनी बद्धरेकताओं को पहचानें। स्वयं के सान्निध्य का लाभ उठाएँ और मुक्त हो ही जाएँ - अभी, इसी क्षण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# फिर से कोई आत्मा जागे

कहते हैं : सम्राट ब्रह्मदत्त रात्रि में नाटक-अभिनय देख रहे थे। नाटक देखते-देखते वे अत्यधिक विचार-मग्न हो गए। विचार-मग्नता इतनी गहरी हो गई कि वे वर्तमान से ठेठ अपने अतीत के जन्मों में उतरते चले गए और उन्हें पूर्व-जन्मों का स्मरण हो गया। ब्रह्मदत्त अपने पूर्व-जन्मों में से किसी एक जन्म के भाई का स्मरण कर शोक-विह्वल हो उठा। उसने देखा- वह और उसका भाई पूर्व-जन्मों में संन्यस्त जीवन व्यतीत कर आए हैं, लेकिन मरने के पूर्व चक्रवर्ती सनत् कुमार का अत्यन्त वैभवपूर्ण जीवन देखकर संकल्प किया था कि आगामी जन्मों में मुझे ठीक इसी प्रकार का वैभव प्राप्त हो। उसी संकल्प के परिणाम में उसे चक्रवर्ती सम्राट का यह जन्म मिला।

अपने भाई को ढूँढ़ने के लिए उसने एक श्लोक लिखा, लेकिन उसे अधूरा ही छोड़ दिया। वह अधूरा श्लोक उसने हर मुँह तक दूर-दूर पहुँचा दिया, यह सोचकर कि अगर मेरा भाई मानव जाति में जन्मा है, तो इस श्लोक की पाद-पूर्ति करेगा। योगानुयोग, ब्रह्मदत्त का भाई भी पृथ्वीलोक में जन्मा था, लेकिन विरक्त होकर मुनि हो गया था, नाम था चित्रमुनि, जब उसने किसी पनिहारिन के मुँह से यह आधा श्लोक सुना, तो शेष आधे की पूर्ति कर सम्राट को भिजवा दिया। सम्राट प्रमुदित हो उठा। अपने सात जन्म पूर्व के भाई को पाकर उसका हृदय गद्‌गद् हो गया।

सम्राट मुनि के पास पहुँचा और अनुरोध किया कि वह वापस संसार में आए



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसके पास जो अथाह वैभव है, उसको स्वीकार कर आधा राज्य स्वयं वरण कर ले। संत ने न केवल उसके आमन्त्रण को ठुकरा दिया, बल्कि अपनी ओर से अमृतवाणी भी सुनाई। ब्रह्मदत्त को समझाया कि वह इस साम्राज्य से, काम-भोग से स्वयं को विरक्त करते हुए परमात्म-पथ का, संयम-पथ का अनुसरण करे। लेकिन ब्रह्मदत्त अपने भाई चित्रमुनि की बात स्वीकार न कर पाया और कहा–

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्ठुं भलं नावि समेय तीरं।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न संयमो मग्गमणुव्वयामो।।

सम्राट ने कहा– जैसे दलदल में धँसा हाथी स्थल को देखकर भी किनारे नहीं पहुँच पाता, वैसे ही हम कामभोगों में आसक्त जन जानते हुए भी संयम-मार्ग का अनुसरण नहीं कर पाते।

जब चित्रमुनि ने देखा कि उनके लाख समझाने के बावजूद सम्राट वैराग्यवंत नहीं हो रहा, तो जाते-जाते अंतिम संदेश के रूप में कहने लगे–

जइतंसि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाईं कम्माइं करेहि रायं।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी तो होहिसि देवो इओ विउव्वी।।

चित्रमुनि ने कहा– राजन्, यदि तू कामभोगों को छोड़ने में असमर्थ है तो आर्य कर्म कर। धर्म में स्थित होकर सब जीवों के प्रति दया करने वाला बन, जिससे कम-से कम तू देव तो हो सके।

'ब्रह्मदत्त और चित्रमुनि का जन्मों-जन्मों का संबंध!' स्वाभाविक है कि किसी सम्राट को जाति-स्मरण हो जाए और पता चले कि मेरा कोई भाई भी रहा था, तो वह चाहेगा कि उसे वह भाई मिल जाए। जन्मों-जन्मों तक जिसका सामीप्य, जिसका बन्धुत्व मिला हो, वह चाहेगा कि इस जन्म में भी उसका सान्निध्य और मैत्री मिले। इस जन्म में भी आपस में मिलन हो जाए, तो व्यक्ति का प्रमुदित प्रसन्न होना स्वाभाविक है। दो वर्ष के बिछुड़े हुओं से मिलने पर भी हमारी आँखें भर आती है, तो कल्पना करो कि सात-सात जन्मों पुराने किसी मनमीत का मिलन हो, तो वह कितना प्रसन्न होगा! वह तो कहेगा–

क्या कहूँ कि मैं क्या हुआ आज,
कृत-कृत्य कहूँ, चिर धन्य कहूँ।
जब तुम आए मम हृदय-राज,
तब निज को क्यों न अनन्य कहूँ।।

ब्रह्मदत्त के पास वैभव है, इसलिए वह अपने भाई को वैभव लेने के लिए



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निमंत्रण देगा और चित्रमुनि के पास संन्यास और वैराग्य है इसलिए वह अपने बन्धु को यही विरासत सौंपेगा। दो मित्रों के मध्य यह विरोधी निमंत्रण है। एक वैभव देना चाहता है और दूसरा वैराग्य। एक निमंत्रण राग के लिए है, दूसरा वीतरागता के लिए। दोनों में से एक तो परास्त होगा ही, एक निमंत्रण तो अस्वीकार होगा ही, लेकिन यहाँ न तो ब्रह्मदत्त अपने मित्र के निमंत्रण को स्वीकार कर रहा है और न चित्रमुनि ब्रह्मदत्त का आमंत्रण स्वीकार कर रहा है।

जिसके पास जो है वह वही देगा। कृष्ण के पास महल हैं, तो महल देंगे और सुदामा के पास चावल के सत्तू हैं, तो वह सत्तू ही देगा। जिसके पास जो है, वही मूल्यवान है। कृष्ण के लिए महलों का मूल्य नहीं है लेकिन सुदामा के लिए सत्तू ही मूल्यवान है। महावीर के पास उनकी अपनी पुत्री प्रियदर्शना जाकर कहे कि भन्ते, आप मुझे विरासत में क्या देंगे, पैतृक सम्पत्ति के रूप में क्या देंगे; तो महावीर उसे पात्र पकड़वाते, उसके केशों का लुंचन करवाते, उसे मुनित्व और संन्यास का महापथ देते, जैसे बुद्ध ने यशोधरा को दिया, अपने पुत्र राहुल को दिया, अपने पिता और परिजनों को दिया। इसीलिए चित्रमुनि ने ब्रह्मदत्त से कहा– वैराग्य लो ताकि तुम मुक्त हो सको। भव-भव में यदि तुम्हें ऐसा ही वैभव उपलब्ध होता रहेगा, तब भी तुम अतृप्त ही मरते रहोगे। इस धरती पर कभी कोई तृप्त हुआ है? अतृप्त-अपूर रहा है मनुष्य का मन!

जब ब्रह्मदत्त जैसे चक्रवर्ती, सिकन्दर जैसे विश्व-विजेता भी अतृप्त-अपूर्ण-प्यासी आत्मा की तरह चले गए, तो हम जो सदा और-और की आकांक्षा करते रहते हैं, कैसे तृप्त होकर जा सकेंगे? सम्राट् भी अपने को अतृप्त पाता है और अपने वैभव को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है, तो हम दो-चार खपरेलों के प्रति व्यामोह करके कैसे तृप्त हो सकते हैं? न तो जीवन से और न काम-क्रोध से कोई तृप्त हो पाता है। जीवन भर चाहे वह प्रार्थना करे कि हे प्रभो, मुझे उठा लो लेकिन जैसे ही मृत्यु का समय करीब आता है, हर व्यक्ति स्वयं को मौत से बचाने का इन्तज़ाम करने लगता है। यह न समझना कि कोई बूढ़ा हो गया है, तो काम-क्रोध से मुक्त हो गया है। साधन जितने अधिक विस्तार पाते जाएँगे, मनुष्य की तृष्णा और वासना भी उतनी ही बढ़ती जाएगी। सत्तर वर्ष का बूढ़ा जिसकी तीन पत्नियाँ मर चुकी हैं चौथा विवाह समाज के भय से चाहे न करे लेकिन मन तो चल ही रहा है और समाज की अनुमति हो जाए तो अपनी ओर से चौथी-पाँचवी शादी करने को भी तत्पर है। मन कभी तृप्त नहीं होता। शरीर तो बूढ़ा हो जाता है पर मन बूढ़ा नहीं होता, उच्छृंखल होता है। मन तो स्वर्ग के नाम पर नर्क ही तलाशता है। मन तो ईमानदारी के बाने में बेईमानी के करतब ढूँढ़ता रहता है। अपने हाथों में फूल दिखाता है लेकिन पहुँचाता हमेशा काँटों



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक है।

मैं तो समझता हूँ कि संसार का कारण न तो क्रोध है, न कषाय, न अहंकार है, अपितु जन्मों-जन्मों तक संसार के निर्माण का मुख्य कारण मनुष्य के मन में बसने वाली वासना (इच्छा) है, काम-भोग की भावना है। वह व्यक्ति वीतराग है जो कंचन और कामिनी से उपरत है। उसकी सांसारिकता की तृष्णा मिट चुकी है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य सबके पीछे एक अकाम है, ब्रह्मचर्य है। यदि कामभाव छूट रहा है तो अहिंसा चरणों में झुकेगी, सत्य आरती उतारेगा, अचौर्य सेवा करेगा। काम की अतृप्ति से परिग्रह का जन्म होता है। काम के विफल होने पर चोरी की भावना जाग्रत होती है। जब काम विकारग्रस्त होता है तो हिंसक हो जाता है। काम के अन्तर्मन में ही चोरी, हिंसा और परिग्रह छिपा है।

महावीर ने पहला सिद्धांत अहिंसा का दिया, लेकिन मैं कहूँगा पहला सिद्धान्त अकाम का होना चाहिए। निष्काम होने का। हिंसा तो बहुत ऊपर है, बाह्य है, जबकि काम हमारे अवचेतन तक जड़ें जमाए है। वही तो मूल रोग है, इसलिए आदमी लगभग हर वक़्त काम की धारा में बहता रहता है। मनुष्य के अवचेतन की यह धारा कभी बाहर उभर आती है, कभी भीतर ही दबी रहती है। गृहस्थी में रहने और संन्यास लेने से काम और अकाम का संबंध नहीं है। हमारी अपने अवचेतन के प्रति सजगता हो जाए, जागरूकता आ जाए तो व्यक्ति काम से निष्काम खुद ही होने लगता है, क्योंकि जहाँ काम का तूफान है, काम का भँवर है, जहाँ काम की आग जलती है वहाँ उसने शांति और पवित्रता की सजगता, आत्म-निर्मलता पर ध्यान केन्द्रित कर लिया।

जीवन का जहाँ मूल स्रोत है वहीं काम मँडराता है और हमारा होश, हमारी सजगता उस केन्द्र पर स्थिर हो जाए तो व्यक्ति काम से निष्काम होने लगता है। अकाम को, ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना स्वयं का परम शांति में विन्यास करना है। आज जिधर देखो, उधर सैक्स की छवि है। राजनीति, खेल और फिल्म - ये तीन ही दुनिया पर हावी हैं। जीवन के मूल्य और जीवन की शुद्धता तो आम लोगों के लिए कोई अर्थ ही नहीं रखती।

आम आदमी का काम से रहित और मुक्त हो जाना सम्भव नहीं है। काम से मुक्त होने के लिए मन से मुक्त होना पड़ेगा। चित्त-दर्शन, चित्त-निरोध, चित्त-साक्षीत्व और चित्त-शुद्धि से गुजरो तो मन की शान्ति और निष्काम का निर्झर लगातार बहेगा।

जैसे लोग वेश ओढ़कर संन्यासी हो जाते हैं, ऐसे ही ब्रह्मचर्य-व्रत को भी लोगों



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ने ओढ़ लिया है। लोक-प्रतिष्ठा और लोक-व्यवहार न हो तो मनुष्य पशुता की सीमा लाँघ जाएगा। काम के जितने संवेग मनुष्य के मन में समाये हैं, उतना धरती पर अन्य किसी प्राणी के मस्तिष्क में नहीं मिलेंगे। आदम की जात इतनी विकृत और तृष्णातुर है। संबोधि और विपश्यना जैसी ध्यान-विधियाँ वास्तव में संवेगों की निर्मूलता के लिए है। चित्त की शांति और शुद्धि के लिए है।

हम अपनी वृत्तियों के प्रति होशपूर्ण बनें। संवेग तो उठेंगे, शरीर अपने स्वभाव में आ सकता है, हमारा होश और ध्यान बरकरार रहना चाहिए। मल की परतें चाहे जितनी चढ़ी हुई हैं, आखिर तो ख़त्म होंगी ही अगर मल से ऊपर उठने का प्रयास और जागरण रहे। मेरे देखे जो काम से निष्काम हो गया उसके जीवन से हिंसा अपने आप चली जाती है। उसकी परिग्रह से आसक्ति टूट जाती है, वह जीवन में कभी चोरी कर ही नहीं पाता क्योंकि वह समझता है चोरी करना सबसे असुंदर काम है। वह तो सत्यं शिवम् सुन्दरम् का सूत्रधार बन जाता है। वह सत्य से प्रेम करता है, शिवत्व उसकी आत्मा में विराजमान रहता है, वह सौन्दर्य से प्रेम करता है लेकिन काया का सौन्दर्य ही सौन्दर्य नहीं है, वे सब चीज़ें सौन्दर्य से जुड़ी हैं जहाँ धरती का कल्याण है, मनुष्य का कल्याण है, जिसमें सत्य व शिव भी है।

मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। बिना होश को जाग्रत क़िए, बिना चित्त की सजगता के कोई तृप्त नहीं हो सकता। अपने आप को देखो और पूछो कि कितने तृप्त हुए। तृप्ति और अतृप्ति के अन्तर्द्वन्द्व से गुजरते हुए वह जान रहा है कि कुछ भी पूर्ण नहीं है लेकिन फिर भी रत है कि शायद....! सभी को अनुभव है। किताबी ज्ञान और अनुभवों से जानते हुए भी हम उससे मुक्त नहीं हो पाए हैं। एक अदम्य वेग उठता है और हम गिरने को मज़बूर हो जाते हैं। हमारा पुस्तकीय ज्ञान, हमारी समझ बहुत ऊपर-ऊपर है और क्रोध, काम हमारे ठेठ अन्तस्तल की गहराई में छिपे हुए हैं। मनुष्य के अंदर जितनी महत्वाकांक्षा वासना को आपूर्त करने के लिए होती है उतनी ही गहरी आकांक्षा मुक्ति के लिए होगी तभी मुक्ति की कोई संभावना, मुक्ति की कोई मीनार खड़ी होती है।

अनुभव से लोग कुछ नहीं सीखते। हर बार क्रोध करते हैं और प्रायश्चित करते हैं कि अब क्रोध नहीं करेंगे। जब तुम क्रोध में नहीं होते तब क्रोध के सारे अवगुणों को जानते हो कि क्रोध ज़हर है, क्रोध आग है, व्यक्ति को जलाती है लेकिन जैसे ही क्रोध की चिनगारी भड़कती है, उसमें सारा ज्ञान स्वाहा हो जाता है। सभी जानते हैं कि आग से हाथ जल जाता है, उसके बावजूद भीतर से उठने वाला संवेग मनुष्य को आग में हाथ डालने के लिए प्रेरित करता है। आदमी बार-बार जलता है, सौ-सौ बार जलता है, तब भी जलने के लिए उत्साहित रहता है। कितनी बार काम के द्वार पर



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहुँचे और हताशा लेकर वापस आए, कितनी बार तृष्णातुर हुए और पाया कि प्यास अभी बुझी नहीं है।

अनुभव के द्वार से महावीर और बुद्ध भी गुजरे। उन्होंने भी विवाह किया, सन्तान भी हुई, आपने भी विवाह किया, आपके भी सन्तान हुई, मगर उनमें और हममें फ़र्क़ है। वे अनुभव से गुजरकर जान गए कि सब निरर्थक हैं, व्यर्थ हैं। उन्होंने जाना कि यह मनुष्य की माया है, उसका भ्रम है कि जो मान रहा है यह उसका सुख है लेकिन सुख नहीं है। और हम बार-बार भोगकर भी व्यर्थता के बोध को नहीं जान पाए या जानते हुए भी अनजान हैं।

सम्राट ब्रह्मदत्त जैसे लोग कह रहे हैं कि हम काम-भोग में आसक्त बने हुए जीव जान रहे हैं कि यह गलत है फिर भी उससे विरक्त नहीं हो पा रहे हैं। जानते हैं, विचार भी करते हैं, पर उससे विरक्त नहीं हो पाते। आँखें होते हुए भी अंधे हैं, ज्ञानी होकर अज्ञानी हैं। दुनिया में सोये हुओं को जगाना सरल है लेकिन जगे हुए को जगाना कठिन काम है। जिनके पास आँखें नहीं हैं, वे प्रयत्न भी करेंगे कि उन्हें आँखें मिलें और जिनके पास आँखें हैं फिर भी ठोकर खा रहे हैं, उनके लिए क्या किया जाए?

मैने सुना है: एक व्यक्ति साइकिल पर जा रहा था। बीच चौराहे पर उसने एक व्यक्ति को टक्कर मार दी। दोनों गिर पड़े। जब उठे तब दूसरे व्यक्ति ने साइकिल सवार को पाँच रुपए दिए और कहा धन्यवाद। साइकिल सवार चौंका। उसने कहा यह क्या, मुझसे ही तो टक्कर लगी और तुम उलाहना देने की बजाय धन्यवाद और पाँच रुपए दे रहे हो। उस आदमी ने कहा, दरअसल अंधे को दान देना मेरा कर्तव्य है। मैंने प्रण किया है कि मुझे जो भी अंधा मिलेगा उसे पाँच रुपये दूँगा। अब तुमसे अधिक अंधा कौन होगा जो आँखें होते हुए भी देख नहीं सकता। तुम्हें दान देना मेरा फ़र्ज़ है।

मनुष्य के पास आँखें हैं, देखने की क्षमता भी है पर सारा देखना परिधि पर हो रहा है, केन्द्र में कोई नहीं पहुँचता। मेरा आह्वान, मेरा निमंत्रण यही है कि व्यक्ति स्वयं को केन्द्र में लाए। अपने होश को, अपनी सजगता, अपने साक्षीत्व और दृष्टाभाव को ठेठ भीतर अन्तरगुहा में लाए। अपना आन्तरिक केन्द्रीकरण करे। अपने होश को हर-हमेशा अपने हृदय में स्थित रखो। परिधि पर टक्कर लगे या न लगे, भीतर तो टक्कर न लगे। इन बाह्य आँखों को खोलने की ज़रूरत नहीं है, इन आँखों के भीतर जो आँखें हैं उन्हें खोलने की ज़रूरत है। अपने अन्तर्मन की आँखें खोलने की ज़रूरत है।


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा भर्तृहरि के बारे में एक घटना प्रसिद्ध है कि जब भर्तृहरि राजसभा में बैठे थे तभी किसी ने उन्हें एक अमृत फल दिया और कहा कि राजन्! जो भी इस फल को खायेगा वह सदा-सदा के लिए अमृत और अमर हो जाएगा, अत्यन्त सुन्दर भी।

कहानी के अनुसार राजसभा में बैठा हुआ राजा भर्तृहरि सोचता है कि मैं तो बूढ़ा हो चला हूँ, अब इस फल को क्या खाऊँ, मैं इसे अपनी राजरानी को, जो अभी युवा है, जिस पर मैं बहुत अनुरक्त हूँ, हमेशा उसी का चिंतन करता हूँ, क्यों न उसे ही खिला दूँ। भर्तृहरि ने वह फल राजरानी के पास भेज दिया। राजरानी महावत पर आसक्त थी, उसने वह अमृतफल उसे सौंप दिया। महावत का प्रेम किसी वेश्या से था। उसने वह अमृतफल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने सोचा मैं इस फल को खाकर क्या करूँगी, मैंने तो जीवन भर पाप-ही-पाप किए हैं। मैं युवा या अमर होकर क्या करूँगी। क्यों न इसे अपने सम्राट को भेंट कर दूँ। वह एक नेक राजा है। वह अगर युवा, सुन्दर और अमर होता है, तो पूरे साम्राज्य का भला होगा। वह फल वापस भर्तृहरि के हाथ पहुँचता है। उसे देख-देखकर वह वैराग्यवंत होता है और एक नए शतक 'वैराग्यशतक' की रचना होती है। उसके पहले ही चरण में यह बात आई है- यां चिन्तयामि सततं मयी सा विरक्ता- ओह, जिसके बारे में मैं दिन-रात सोचा करता था वह मुझसे इतनी विरक्त निकली। मुझे नहीं मालूम कि वह मुझसे इतनी विरक्त है जबकि मैं उसी के बारे में सतत चिंतन किया करता हूँ। राजसभा में भी उसे ही याद करता, शिकार पर जाता तब भी उसी की चिंता करता। धर्म-मार्ग पर बढ़ता तब भी उसकी याद को न भुला पाता, लेकिन ओह वह तो मुझसे कितनी विरक्त है। भर्तृहरि बदल गये। राजा भर्तृहरि राजर्षि भर्तृहरि हो गए।

मनुष्य संसार में, काम-भोग में आसक्त है, वह अनुभव भी करता है, ठोकर भी लगती है, लेकिन राजर्षि भर्तृहरि जैसे लोग जाग जाते हैं और आम लोग बार-बार ठोकर लगती है फिर भी वहीं-वहीं जाकर गिरते हैं। चित्रमुनि कह रहे हैं- राजन्! यदि तुम काम-भोगों को छोड़ने में असमर्थ हो, मैं तुम्हें छोड़ने के लिए प्रेरित कर रहा हूँ, फिर भी तुम नहीं छोड़ पा रहे हो। मनुष्य की यह आसक्ति, मनुष्य की कर्म-नियति का उदय, मनुष्य का यह मिथ्यात्व कि चाहते हुए भी, धर्म को जानते हुए भी वह काम-भोग से निवृत्त नहीं हो पाता।

'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्ति'। दुर्योधन महाभारत में कहते हैं कि मैं धर्म को जानता तो हूँ फिर भी उसमें प्रवृत्त नहीं हो पाता, मैं अधर्म को भी जानता हूँ, फिर भी उससे निवृत्त नहीं हो पाता। पर ऐसा क्यों? भोगों के प्रति आसक्ति ही वह कारण है। चित्रमुनि कहते हैं कि तू यही मत समझ कि काम-भोगों को छोड़ देना ही धर्म है। काम-भोग से उपरत हो सको तो बलिहारी! न हो सको, तो



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग और भी हैं। आर्य मार्ग स्वीकार करो। गृहस्थ-धर्म का, मानव-मूल्यों का वरण कर अध्यात्म-चेतना के बल पर कर्मों के कारागार से छुटकारा मिल सकता है।

बहुत से ऐसे कर्म हैं जिनमें तू प्रवृत्त हो सकता है। और कुछ नहीं तो प्राणिमात्र के प्रति दयालु तो हो ही सकता है। तू आर्य कर्म तो कर, अच्छे कर्म तो कर, भलाई कर, मानवता का उपकार कर। तू एक सम्राट है। तुझे काम-भोगों में इतना आसक्त नहीं रहना चाहिए। तुझे तो हर ओर से वीतरागता पानी है। तू वीतराग का वंशज है। संयत-पुरुष का मित्र है।

हम सब भी तो सम्राट ही हैं। अपने मालिक और अपने राजा तो हम खुद ही हैं। इसलिए चित्रमुनि कह रहे हैं कि तुम तो राज्य के भी मालिक हो। तुम में तो कुछ करने की सामर्थ्य भी है इसलिए राज्य के लोगों का भला कर। स्वयं को हिंसा से उपरत कर, झूठ से परहेज कर, चोरी के माल पर कुदृष्टि मत डाल, परिग्रह पर अंकुश लगा और जितना संभव हो सके, स्वयं को मैथुन से अलग रख। चित्रमुनि कहते हैं आर्य कर्म कर। महावीर ने पाँच आर्य कर्म कहे हैं- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। बुद्ध ने अष्टांगिक आर्य मार्ग कहे हैं-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मांत्, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। पतंजलि ने भी आठ प्रकार के आर्य मार्ग कहे हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। चित्रमुनि कहते हैं कि अपने जीवन में कम-से-कम ये आर्य कर्म तो कर। इन पाँच मार्गों को अथवा इन आठ मार्गों को तो स्वीकार कर ही सकता है। क्योंकि जानते हुए भी संसार में लोग काम-भोगों से अनासक्त नहीं हो पाते। जैसे दलदल में फँसा हाथी किनारे को देखते हुए भी स्वयं को कीचड़ से बाहर नहीं निकाल पाता।

आपने मुझसे बद्धरेक हाथी की चर्चा सुनी है। जिस गजराज ने कौशल-नरेश की महान् सेवा की, दसों युद्धों में विजय का परचम लहराया, बूढ़ा होने पर वही दलदल में धँस गया। अब भला बुढ़ापा किसे नहीं आता, कौन युवा वृद्ध नहीं होता। दलदल से उसे सैनिक नहीं निकाल पाये, बूढ़े महावत द्वारा युद्ध के नगाड़े बजाये जाने पर उसका सोया गजत्व जाग उठा। वह स्वाभिमान से भर उठा। दलदल क्या बाहर आ ही गया। बूढ़ा फिर से जवान हो उठा। निजत्व जग उठे, तो दलदल क्या है! काम-भोग के दल-दल से कमल बाहर आ ही जाता है। आम हाथी दलदल में धँस जाये, तो जैसे-जैसे निकलने की सोचता है, और धँसता चला जाता है। काम-भोग का रस है ही ऐसा, खुजली को खुजलाने जैसा।

चित्रमुनि के संदेशों को सुनकर वह सम्राट भले ही विरक्त न हो पाया हो, लेकिन उस बूढ़े महावत की तरकीब पाकर उसे बूढ़े हाथी में भी नए प्राण संचारित हो



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गए, उसमें नई जान आ गई। बूढ़े महावत ने कहा : इसे बाहर निकालने का एक ही तरीक़ा है– ज़ोरों से नगाड़े बजाओ, युद्ध-दुन्दुभि बजाओ, रण के वाद्य बजाओ, तब देखो इस बिगुल को सुनकर इस हाथी में कहाँ से प्राण आते हैं। नगाड़े बजाए गए तब न जाने कहाँ से भीतर सोया हुआ गजत्व जाग उठा। उसने अपनी पूरी शक्ति लगाई और एक ही छलांग में दलदल से बाहर आ गया।

जब भगवान् से यही बात शिष्यों ने कही कि भगवन्! बूढ़ा बद्धरेक हाथी दलदल से बाहर निकल आया। भगवान ने कहा मैं भी यही सोच रहा हूँ वह बूढ़ा, उसमें भी इतना बल था कि वह दलदल से बाहर आ सकता है और तुम जो मेरे शिष्य हो, वीतराग और संबुद्ध के मार्ग पर आ चुके हो लेकिन फिर भी दलदल से बाहर नहीं आ पाए। तुम चाहे जिस रूप में, चाहे जिस वेश में हो फिर भी तुम्हारे अंदर काम-भोग की तरंग, काम-भोग की धारा अवचेतन में निरंतर बह रही है। तुम भी बाहर आ जाओ तो सौभाग्य कि कोई दुन्दभि बजी, किसी ने नगाड़ा बजाया और कोई दलदल से बाहर आया। और बाहर न आ पाया तो शरीर स्वस्थ व सुडौल होते हुए भी वह जराजीर्ण हो चुका है। उसकी आत्मा मृत हो चुकी है, शिथिल और कमजोर हो चुकी है। जगाना शरीर को नहीं, अन्तरात्मा को है। अन्य कुछ न कर सको तो कम-से-कम आर्य कर्म तो करो। और कुछ नहीं तो सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि को तो उपलब्ध हो जाओ।

बुद्ध ने कहा सम्यक् दृष्टि– अर्थात् हमारी दृष्टि में जो मिलावट हो रही है, कदाग्रह और पक्षपात हो रहे हैं उन सभी से अपनी दृष्टि को बाहर निकालो। मिलावट का अर्थ दुकानदारों वाली मिलावट नहीं है। आँखें जो हर चीज़ को कभी अपनी, कभी इसकी, कभी उसकी नज़र से देखती है, उस मिलावट को दूर करने की है।

दूसरा चरण सम्यक् संकल्प– जो सही है, ठीक है, उसका संकल्प; जिद नहीं। मन में स्थिरता लाना ही संकल्प है। अब सम्यक् वाणी–वाणी, वचनों का सही प्रयोग, उपयुक्त कथोपकथन। बोलो मगर तौलकर, सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्। सत्य भी बोलो तो उसमें माधुर्य होना चाहिए। सत्य कभी कड़वा नहीं होता, कड़वाहट तो भीतर भरी है जो सत्य को भी कटु बना डालती है। सत्य तो चिर मधुर है। मधुर झूठ से परहेज रखो तो अप्रिय सच से भी परहेज रखो। वाणी हो सम्यक्, सही और संतुलित। फिर कहते हैं –सम्यक् कर्मांत– उन कर्मों से परहेज रखो जिसमें किसी का अहित या बुराई छिपी है। उन कर्मों का अंत कर दो जिससे दूसरे की निंदा या नुकसान हो। वही कार्य करो जो स्वस्तिकर हो, कल्याणकारी हो। सम्यक् आजीव–आजीविका के साधन सम्यक्, सही-ठीक होने चाहिए। धनोपार्जन करो



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर चोरी से नहीं, झूठ बोलकर या छल-कपट करके नहीं। धन भी उतना ही कमाओ जिससे हमारे जीवन के व्यवहार के साधन जुटाए जा सकें। बुद्ध कहते हैं कमाई भी सम्यक् करना, ठीक ढंग से संतुलित ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ अपनी आजीविका कमाना। उतना ही धन कमाओ, जितना उपभोग कर सको।

सम्यक् आजीव के पश्चात् है सम्यक् व्यायाम - अर्थात् अपने तन और मन को स्वस्थ रखना। इतना व्यायाम भी न करो कि शरीर थक जाए। तन आलसी न हो, चुस्त-दुरुस्त रहे, और कार्य का उद्वेग भी न रहे। नहीं तो एक पल भी शान्त न बैठ सकोगे। हर समय स्वयं को उलझाये रखोगे। कुछ-न-कुछ करने की उधेड़बुन मन में लगी रहेगी। अखबार पढ़ो, रेडियो सुनो, टी.वी. देखो, बातें करो- तुम कहीं-न-कहीं मन को चिपकाए रखोगे। इसलिए न आलस काम का है न अत्यधिक कर्मठता। कर्मठ होना चाहिए लेकिन अत्यधिक कर्म जल्दबाजी में बदल जाएगा, तब सही गलत का भान न रहेगा। कार्य जल्दी होना चाहिए, पर जल्दबाजी से नहीं। जल्दबाजी नुकसान पहुँचाती है। सम्यक् व्यायाम होना चाहिए। फिर है सम्यक् स्मृति- कर्म के प्रति ठीक-ठीक स्मरण, ज्ञान, बोध और सजगता बनी रहे। जो भी करें पूरे होश से करें, ज्ञानपूर्वक और सजगता के साथ करें। इसके बाद सम्यक् समाधि- अन्तर्मन में अपने होश को बनाए रखें। साँस रोककर बैठना समाधि नहीं है- यह तो प्राणायाम में श्वास की एक प्रक्रिया हो गई। समाधि तो उस अवस्था का नाम है जो प्रतिकूल और अनुकूल स्थितियों में भी व्यक्ति को तटस्थ बनाए रखती है। साइबेरिया में सफेद भालू छः छः माह तक बर्फ गिरने पर साँस रोके पड़े रहते हैं, क्या यह समाधि हो गई? मेंढ़क सर्दी-गर्मी में भूगर्भ चले जाते हैं- वर्षा आने पर पुनः बाहर निकल आते हैं- यह भी समाधि नहीं है मात्र साँस रोकने की प्रक्रिया है।

समाधि श्वास का रोकना नहीं है- यह तो शरीर के साथ ज्यादती है। समाधि तो सजगता है, होश है, बोध है। अपने अंतस् में, अपने अंतर्केंद्र में प्रतिक्षण अपने कर्त्ता और कर्म के प्रति जो तटस्थता और साक्षीभाव है, जो सजगता है और तथाता की उपलब्धि है, वही समाधि है।

यह जो आर्य मार्ग है, वह एक आध्यात्मिक उपक्रम है। सम्यक् जीवन-शैली का यह उपक्रम इसलिए ताकि सब लोग महामार्ग के पथिक हो सकें, ब्रह्म-चर्या कर सकें। संन्यास का श्रेय आत्मसात् कर सको, तो बलिहारी, कम-से-कम आर्य मार्ग का, अणुव्रत और मध्यम मार्ग का तो आचरण होना चाहिए। जीवन के मंदिर में इसे हम द्वार समझें।

चित्रमुनि हमें निद्रा, स्वप्न, सम्मोहन और मूर्च्छा से जागृति की ओर बढ़ने को प्रेरित कर रहे हैं। मूर्च्छा मृत्यु है और जागरण जीवन। जागे सो पावे। मूर्च्छा से परम



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जागरण की ओर बढ़ो, अंधकार से आलोक की ओर वर्धमान बनो।

पहले चरण में बोध और संकल्प चाहिए। संकल्पवान् ही आत्मवान् होता है। हम ज्ञान-चेतना को जगाएँ। यह जो निद्रा-मूर्च्छा-स्वप्न से घिरा नाटकीय जीवन है, उसके प्रति जगाएँ साक्षी चेतना को। आर्य मार्ग कहता है सम्यक् संकल्प हो। सम्यक् संकल्प और नाटकीय जीवन के प्रति ज्ञान-चेतना, साक्षी चेतना, यही तथाता की परम उपलब्धि में मददगार है।

महावीर के पाँच आर्य कर्मों से आप परिचित हैं, लेकिन बुद्ध के इन आठ मार्गों में से हमारे जो भी काम आ जाए प्रेम से अपनाएँ। चित्रमुनि ने ब्रह्मदत्त को सम्बोधित किया। मैं उसी सत्य को पुनः दोहरा रहा हूँ।

गजराज जैसे दलदल से बाहर आया था महावत की जीवन-दृष्टि को पाकर। मैं फिर से उन नगाड़ों को बजा रहा हूँ। कोई तो ऐसा गजराज ज़रूर होगा, जो दलदल से बाहर आ ही जाएगा।

वृत्ति से ऊपर उठ सको, वासना का विसर्जन हो सके, काम-भोग से मुक्त हो जाओ, तो अच्छी बात है। ऐसा नहीं हो सके, तो महावीर के पंचमार्ग या बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग को तो श्रद्धापूर्वक जीओ। आर्य, कुल से नहीं, आर्य-कर्म से आर्य कहलाओ। आर्य-मार्ग सारी मानवजाति के लिए है। हमारा हर कार्य सम्यक् और सत्य-शिवानुरूप हो, यही आज का संदेश है। यही कहना है - मानवता को।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# सफल हो हमारी रातें

एक पुरानी घटना है। इशुकार नगर में राजपुरोहित भृगु रहता था। नगर का राजपुरोहित होने से हर प्रकार की सुख-सुविधा उपलब्ध थी, लेकिन भृगु को हर समय संतान का अभाव खटकता था। यौवन ढल ही चला था। एक दिन भृगु की पत्नी यशा ने किसी प्रकाश-पुंज को अपनी कोख में उतरते देखा। उसने यह भी देखा कि वह दिव्य पुंज दो भागों में बँट चुका है, विकसित हुआ और परमात्मा के महामार्ग का अनुसरण कर रहा है। यशा यह स्वप्न देखकर बहुत प्रमुदित हुई।

उसने समय पर दो संतानों को जन्म दिया। दोनों पुत्र बड़े होने लगे। लेकिन भृगु ने उनके लिए यह नियम-मर्यादा बना दी कि वे दोनों किसी भी संत से मेल-मिलाप न कर पाएँ, किसी संत का चेहरा भी न देख पाएँ। दोनों बच्चों के मन में संतों के प्रति, श्रमणों और ऋषियों के प्रति नफ़रत और घृणा की आग भर दी गई। लेकिन योगानुयोग, दोनों बालक नगर के बाहर क्रीड़ा कर रहे थे, उन्होंने संतों को देखा और पेड़ पर चढ़कर छिप गए। लेकिन उनकी करुणा से भरी, प्रेम भरी, धर्म भीगी चर्चाओं को सुनकर वे दोनों प्रभावित और प्रमुदित हुए। वे संतों के पास पहुँचे। संतों ने उन्हें आत्म-ज्ञान का प्रतिबोध दिया। उन्होंने चर्चा के मध्य आत्म-ज्ञान की पूर्ण संभावनाएँ और संसार के दलदल की संभावनाओं का परिचय कराया। दोनों बालक घर पहुँचे और अपने माता-पिता से कहा कि हम परमात्मा के महामार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं। आप हमें अनुमति दें।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संन्यास की बात सुनते ही माता-पिता दंग रह गए। राजपुरोहित भृगु बोले- जानते हो तुम क्या कर रहे हो? बहुतेरा समझाया गया, महामार्ग के पथ पर जाने के लिए नानाविध रोका गया। पिता ने कहा- अगर तुम संन्यासी हो गए तो तुम्हें जन्म देने का औचित्य ही क्या रहा? हमने तुम्हें जन्म ही क्यों दिया? तुम संन्यासी हो गए तो हमारा पिण्डदान कौन करेगा, पितृ-तर्पण कौन करेगा, तुम लोगों के बिना हमारी आत्माओं की सद्गति नहीं होगी। तुम्हारे बिना हमारा वंश कैसे चलेगा। लेकिन पुत्रों की आत्म-ज्ञान से भरी बातों के सामने माता-पिता के तर्क पराजित हो गए। वे अपने मार्ग पर बढ़ने के लिए अडिग थे।

राजपुरोहित और उनकी पत्नी ने पाया कि जब हमारे दोनों बाल सुकुमार अगर जीवन के महाकल्याण के लिए आगे बढ़ना चाहते हैं तो वे घर में रहकर क्या करेंगे। माता-पिता दोनों ने अपने पुत्रों का अनुसरण किया। अपना वैभव-सम्पत्ति सभी यथावत छोड़कर महामार्ग के लिए निकल गए। यह ख़बर सम्राट के पास पहुँची तो 'जिसका कोई मालिक नहीं, राजा ही उसका मालिक' इस उक्ति के अनुसार भृगु की सारी ज़मीन-जायदाद, पूरी सम्पत्ति राजकोष में डालने के लिए ज़ब्त कर ली गई। लेकिन जब महारानी ने यह सुना तो महाराज को प्रताड़ित करते हुए कहा कि राजपुरोहित ने तो धन और वैभव की असारता को समझकर, उसके दोनों पुत्रों ने जीवन के सत्य को समझकर, महामार्ग का अनुसरण किया और आपने उन्हीं के परित्यक्त धन, ज़मीन-जायदाद को अपने राजभंडार में डाला। किसी ने उसे असार समझा और आपने उसी असार तत्त्व को ग्रहण किया, आपकी आत्मा को धिक्कार है। धिक्कार है आपकी दृष्टि को, धिक्कार है आपकी मानसिकता को।

महारानी से इस प्रकार की प्रताड़ना की उम्मीद न थी। कोई पति अपनी पत्नी से यह आशा नहीं करता कि वह उसे झिड़केगी। लेकिन महारानी तो स्वयं ही व्याकुल हो गई थी कि धन्य हैं वे बाल-पुत्र जिन्होंने महामार्ग का अनुसरण किया और माता-पिता भी उसी पथ के पथिक हो गए और एक हम हैं जो दिन-रात राज-वैभव में डूबे हुए, संसार में आसक्त रहकर निरन्तर कीचड़ में अधिकाधिक धँसते जा रहे हैं।

महारानी ने राजा को बताया कि वह भी उन्हीं दोनों भृगुपुत्रों का अनुसरण करेंगी। प्रताड़ना का यह असर हुआ कि असार को असार समझा, सार का बोध हुआ और स्वयं सम्राट भी महारानी के साथ हो लिए। इस तरह एक राज्य से एक समूह जाग्रत हुआ। वह व्यक्ति, वह समाज, वह संघ निर्मित हुआ जिसकी चर्चा उत्तराध्ययन सूत्र में की गई है।

उन दोनों भृगुपुत्रों ने अपने पिता को जो संदेश दिए, जो सूत्र कहे, उनमें प्रवेश करने से पूर्व हम कहानी के कुछ बिन्दुओं को लें।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वाभाविक है कि जब किसी व्यक्ति को शुभ स्वप्न आता है, वह प्रसन्न और खुश होता है। संतान की उत्पत्ति पर अनेक प्रकार से अपनी खुशी प्रकट करता है। प्रसन्नता का कारण मन की गहराई में छिपी लोकैषणा है। एक गहन वित्तैषणा, गहरी पुत्रैषणा छिपी हुई है, स्त्रैषणा छिपी हुई है। जहाँ-जहाँ मनुष्य के भीतर एषणा छिपी रहती है, वहाँ-वहाँ स्त्री को पाने के लिए, पुत्र को पाने के लिए, धन को पाने के लिए, लोक में अपना नाम कमाने की चाह और तमन्ना बनी रहती है। मनुष्य की मूढ़ता अज्ञान नहीं, उसकी एषणा है, चाहत है, विषय के प्रति उसकी तलब है, विषय-वस्तु के प्रति मन में पलने वाली तृष्णा है। कोई व्यक्ति साहसपूर्वक पत्नी, पुत्र और धन छोड़कर संत भी हो जाए, लेकिन फिर भी वह लोकैषणा में उलझ जाता है।

मनुष्य घर में रहता है तो धन को पाने की एषणा पालता है, संसार में रहता है, तो हर वक़्त स्त्री को पाने को आतुर रहता है, गृहस्थ में होने पर पुत्र व संतान के लिए उत्सुक रहता है, और संन्यास ले चुका है तो अपना नाम कमाने की चेष्टा! विभिन्न आयोजन करता रहता है। अगर उसे सही आत्म-बोध हुआ है, सही मार्ग पर आरूढ़ होने की जिज्ञासा जगी है, तो उसने जान लिया कि जब संसार ही झूठा है तो नाम कौन-सा सच्चा और स्थायी है। जब संसार ही त्याज्य है तो नाम और उसकी कीर्ति कहाँ शाश्वत और सनातन है। मनुष्य की प्रकृति है कि वह संसार तो छोड़ने को तैयार हो जाएगा, लेकिन नाम न छोड़ पाएगा। जब वह जान लेता है कि नाम पूरी तरह आरोपित, प्रक्षेपित और मिथ्या है, तब एक प्रकार से संसार से जुड़े संबंध आधे हो जाते हैं। नाम को व्यक्ति समाज के बीच जीता है और संसार को परिवार के मध्य जीवित रखता है।

जब वह नाम के, पद के मिथ्यात्व को जान लेता है या प्रतिष्ठा को मन का बहकावा समझ लेता है तब उसका समाज के साथ, संसार के साथ संबंध शिथिल हो जाता है और वह एकाकीपन की संवेदना, एकाकीपन के अनुभव और मौन में डूबने लगता है।

नाम के प्रति आसक्ति होने पर अपने प्रति दी जाने वाली गालियों से क्रोध पैदा होगा, खीज आएगी, लेकिन नाम के प्रति वीतराग होने पर कोई भी गाली लगती नहीं है। कोई कहे कि चन्द्रप्रभ अच्छा आदमी नहीं है; वह गाली भी दे रहा है। अब चन्द्रप्रभ स्वयं को क्रोधित भी कर सकता है और हँस-खिल भी सकता है। अगर वह यह माने कि जो चन्द्रप्रभ है वह मैं हूँ, तो गालियाँ सुनकर क्रोधित होगा लेकिन जब वह जाने कि चन्द्रप्रभ केवल एक नाम है, एक संज्ञा है, तब गाली कोई देगा और वह हँसेगा। कहेगा आज चन्द्रप्रभ के साथ बहुत बुरा हुआ, मेरे साथ कुछ न हुआ लेकिन चन्द्रप्रभ के साथ अच्छा न हुआ कि उसे इतनी गालियाँ सुननी पड़ीं। गलत मैंने किया


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और गाली पड़ी बेचारे चन्द्रप्रभ को।

लोकैषणा के टूटने से जीवन में नया संन्यास घटित होता है। व्यक्ति घर में रहते हुए संत हो जाता है। लेकिन जब वह पाता है कि मेरा नाम हुआ, मुझे पत्नी मिली, पुत्र प्राप्त हुआ, धन आया, वह प्रसन्न हो जाता है। परन्तु किसी को पता चले कि मुझे पुत्र तो मिला लेकिन बड़ा होने पर वह साधु बन जाएगा तो बहुत मुश्किलें खड़ी हो जाएँगी। पुत्र पाने की सारी खुशियाँ तिरोहित हो जाती हैं। बेटा आत्महत्या कर ले, हमें बर्दाश्त हो जाएगा, विवाह होते ही माता-पिता को छोड़कर अलग घर बसा ले, हम सहन कर लेंगे, घर में रहकर कुटेवों से घिरा उपद्रव करता रहे हम स्वीकार कर लेंगे, लेकिन जैसे ही पता चले कि वह दीक्षा लेकर मुनित्व ग्रहण करने वाला है, हमें असह्य पीड़ा होती है। बेटा तो यूँ भी कोई सेवा करने वाला नहीं है लेकिन संन्यास तब भी न लेने देंगे। जैसे संन्यास कोई हौवा है या शैतान है जो जीवन समाप्त कर देगा। हाँ, संसारियों के लिए तो हौवा ही है। कोई संत सामने आये तो उसके चरणों में तो हम झट से झुकने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन खुद को संत होना हो तो दस कदम पीछे खिसक जाएँगे।

किसी दूसरे का बेटा संन्यासी हो रहा है तो हम दस लाख का चढ़ावा बोल देंगे, लेकिन अपना बेटा कहे पिताश्री! मैं महामार्ग का अनुसरण करना चाहता हूँ तो पिता समझाएगा बेटा तुझे क्या हो गया है, तेरा दिमाग तो ठिकाने है, कल से धर्म-स्थल पर, धर्म-सभा में जाना बंद कर दे, तुममें पागलपन आ गया है, ये सब क्या बातें सोच रहे हो। अब पिता बेटे को संसार का अर्थ और महत्त्व समझाएगा। वह समझाएगा-संसार में बहुत रस है, बहुत सुख है, हालांकि खुद ने नहीं पाया है, फिर भी बेटे को समझा रहा है। क्योंकि बेटा चला गया तो उसका नाम, उसका वंश कैसे चलेगा। उसकी पीढ़ी, उसका संसार ही खत्म हो गया- समझा रहा है। जब तुम ही न रहे तो तुम्हारा नाम कैसे रह पाएगा। नाम मिटे या मरे, लेकिन तुम जीवित हो, जीवंत हो तो नाम के होने या न होने से क्या फ़र्क़ पड़ता है।

हमारे सारे संबंध, सारे अर्थ जीवन के हैं। सभी नाम, पद, प्रतिष्ठा जीवन की है। अब गांधी की समाधि पर कोई फूल चढ़ाए या न चढ़ाए इससे गांधी को क्या प्रयोजन होगा। तुम मंदिर में जाकर महावीर की प्रतिमा को शीश झुकाओ या वहाँ गपशप कर चले आओ, महावीर को इससे कोई प्रयोजन नहीं है। राम के चरणों में कोई अपने हृदय को समर्पित करे या बकरे की बलि चढ़ाए, राम को इससे कोई मतलब नहीं। जीवन के अर्थ, सारे मूल्य जीवन के हैं, लेकिन पिता यही समझाएगा बेटा! संसार में बहुत रस है।

किसी भी पिता ने अपने बेटे को यह नहीं समझाया होगा कि देख मैंने शादी की,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन कुछ भी न पाया। मैं एक बात कहना चाहूँगा कि एक बेटे को उसके विवाह के पूर्व अपने जीवन के अनुभव बता दो। तुमने जो सुख या दुख पाया, जो पीड़ा या रस पाया है, उसे पूरी ईमानदारी के साथ बिना लाग-लपेट के अपने बेटे को सुना दो। फिर बेटे पर छोड़ दो कि उसे अपना भविष्य कैसा बनाना है।

पर पिता अपना अंकुश रखना चाहता है बेटा कहीं हाथ से निकल न जाए इसलिए उस पर अंकुश बनाए रखते हैं। बेटा संगीतकार होना चाहता है, लेकिन पिता के अंकुश के कारण इंजीनियर बन जाता है। जो इंजीनियर बन गया उसकी इच्छा डॉक्टर होने की थी। जो डॉक्टर बन गया उसकी इच्छा चित्रकार होने की थी। आप जानते हैं हिटलर चित्रकार बनना चाहता था लेकिन न बन सका। परिणामतः जो ऊर्जा सृजन कर सकती थी, निर्माण कर सकती थी, वह विध्वंस करने लगी। चित्र बना न पाया तो चित्रों को नष्ट करने में लगा रहा। हर पिता अपने बेटे को एकपक्षीय ज्ञान देता है, जीवन का पूरा ज्ञान नहीं देता। पिता होने के नाते यह उसका फर्ज है कि जीवन को जैसा जीया, जैसा जाना, एक बार पूरी प्रामाणिकता के साथ बेटे से कह दे।

मैंने अपने जीवन में बहुतेरी पुस्तकों को, शास्त्रों को पढ़ा लेकिन जब से जीवन को जाना सारे पोथे व्यर्थ-से प्रतीत होने लगे। जीवन ही एक खुली किताब है, पूरा जगत ही एक शास्त्र है सिर्फ़ पढ़ने वाली आँखें चाहिए। वस्तुतः संसार से बढ़कर जीवन का अन्य कोई शास्त्र है ही नहीं, सभी शास्त्र संसार में संसार के द्वारा ही निर्मित किये जाते हैं। मेरे देखे तो संसार ही सबसे महान व विस्तृत शास्त्र है। जीवन और जगत के प्रति सजगता और जागरूकता चाहिए। मेरे लिए तो जीवन और जगत के प्रति इसी सजगता और जागरूकता का नाम अध्यात्म है। ज़रूरत आँख को खोलने की, आँख को खोजने की है।

पिता समझाएगा कि तूने संन्यास ले लिया तो मेरा पिंडदान कौन करेगा, मेरी अस्थियाँ गंगा में कौन विसर्जित करेगा। बेटे के बिना सद्गति न होगी। अगर आप ऐसा मानते हो, तो फिर उन तीर्थंकरों का क्या होगा जिन्होंने विवाह ही न किया या जिनके बेटे न हुए। लेकिन उन्हें गति की चिंता ही न थी। वे तो सद्गति भी नहीं चाहते। वे तो गति से ही मुक्त हो जाना चाहते; क्या दुर्गति और क्या सद्गति। जो अपने जीवन में ही गति से मुक्त होने का प्रयास नहीं कर पाते, वे ही दुर्गति और सद्गति के बारे में चिंतनशील रहते हैं। और तुम क्या सोचते हो कि पिंडदान देने से पिंड तुम तक पहुँच जाएगा? तुम्हें क्या पता कि तुम स्वर्ग में जाओगे या नरक में, तब पिंड कहाँ पहुँचेगा? पर हमारे बेटे-हमें सांत्वना मिलती है, आश्वासन मिलता है कि हम चाहे नरक में जाएँ, बेटा लिखेगा 'स्वर्गीय'। इसी सांत्वना में वह जीवन व्यतीत करता है और मनुष्य-योनि तथा संसार का विस्तार करता है। चलो मान लिया है कि



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम स्वर्ग में ही पहुँच गए तो क्या वहाँ इतनी कमी है कि तनिक से आटे के लिए तुम्हें इतनी मोह-माया करनी पड़ती है जबकि स्वर्ग में अनन्त वैभव हैं। वहाँ तो वैभव का साम्राज्य बिखरा पड़ा है, फिर क्यों इस पिंडदान के लिए संसार का जाल फैलाते हो!

क्या तुम्हारे स्वर्ग में इतना अभाव है कि वहाँ का संचालन धरती के आधार पर हो कि यहाँ गेहूँ होगा तो वहाँ के लोगों का पेट भरेगा। अगर ऐसा ही है तो हम धरती पर ही जन्म लेते रहें और कोई धर्म-कर्म स्वर्ग के नाम पर न करें। ऐसे स्वर्ग में हम न जाना चाहेंगे जिसको धरती के लिए मोहताज होना पड़े। इससे तो यह धरती ही बेहतर है जहाँ हम अपनी मेहनत की कमाई खा सकते हैं, किसी दूसरे पर निर्भर रहने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। और फिर क्या गारंटी कि तुम स्वर्ग ही पहुँचोगे!

एक बार ऐसा हुआ कि गुरु नानक ने देखा कि पंडित यजमान को ख़ूब मूर्ख बना रहे हैं। गंगा किनारे तर्पण चल रहा था और लालची पंडित कहे जा रहा था। गुरु नानक देख रहे थे यहाँ-वहाँ यही सिलसिला चल रहा था। उन्होंने भी सोचा क्या मालूम पहुँच ही जाए तो क्यों न गंगा-जल पंजाब पहुँचा दूँ। उन्होंने गंगा से लोटा भर-भर पानी निकालना शुरू किया और गंगा की तरफ पीठ कर जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगे, 'हे गंगा माँ, मैं तुम्हें धरती पर डाल रहा हूँ और यह सारा पानी मेरे पंजाब तक पहुँच जाए।'

पंडितों ने उन्हें ऐसा करते देखकर कहा, 'यह क्या कर रहे हो, ऐसे पानी डालने से क्या गंगा पंजाब तक पहुँचेगी?' नानक ने कहा, 'जब तुम्हारा पिंड उस स्वर्ग तक पहुँच सकता है तो मेरा पानी इसी धरती पर पंजाब के खेतों तक क्यों नहीं पहुँच सकता। जब पानी नहीं पहुँच सकता तो तुम्हारा यह पिंड भी कहीं नहीं पहुँचेगा। अच्छा होगा यह दान यहाँ बैठे हुए भिखारियों को दे दो। उनका पेट भरेगा और वे जो दुआएँ देंगे उनसे ज़रूर तुम्हारे पिता की आत्मा को शांति मिल जाएगी।'

मनुष्य के भीतर जब आत्म-ज्ञान की लौ जग जाती है, तब कितना ही गहन अंधकार क्यों न हो उस अंधकार को तोड़ा जा सकता है। माना, पूरे संसार के अंधकार को नहीं तोड़ा जा सकता, पर जहाँ-जहाँ यह दीप पहुँचेगा, उसके आसपास का अंधकार तो दूर हटेगा ही। जहाँ-जहाँ आत्म-ज्ञान की रश्मियाँ पहुँचेंगी वहाँ तो प्रकाश होगा ही। तब हर पिता को चोट लगती है, हर माँ को चोट लगती है। जब वे देखते हैं कि उनका युवा-पुत्र महामार्ग पर आगे बढ़ रहा है। कहाँ हम बूढ़े और कहाँ वह युवा! हम जीवन का उपभोग करके भी जीवन के सार को उपलब्ध न कर सके और वह जीवन के धरातल पर कदम रखे, उससे पहले ही परम पथ पर कदम बढ़ाने के लिए कृत संकल्प और प्रतिबद्ध हो चुका है। पर हमारी चेतना कहाँ जाग्रत होती है। क्योंकि जैसे-जैसे कीचड़ में धँसते हैं कीचड़ सुहावना, सुखद और रसपूर्ण



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मालूम होता है। जो खारा पानी पीने के अभ्यस्त हो चुके हैं, उन्हें मीठा पानी पिलाओ तो वे इसे ही खारा कहेंगे। अभ्यास ही ऐसा है। किसी बीमार को मिठाई खिलाओ तो उसे वह बिल्कुल बेस्वाद लगेगी। मिठाई बे-स्वाद नहीं है, तुम्हें बुखार ही इतना तेज है कि मीठा रस मीठा नहीं लगता।

हमने जीवन में सिर्फ़ क्रोध ही किया। इसलिए ऐसा लगता है कि क्रोध करने से ही किसी पर नियंत्रण किया जा सकता है। अभी तक प्रेम का रस ही न पीया, प्रेम का स्वाद ही न चखा इसलिए नहीं जानते कि प्रेम के द्वारा किसी के दिल को कैसे जीता जाता है। क्रोध करके तो आप अपने बेटे को भी अपने से जीवन भर जोड़ कर नहीं रख सकते। लेकिन प्रेम की भाषा से आप सारी दुनिया को अपना बना सकते हैं। प्रेम, अहिंसा, करुणा की भाषा आनी ही चाहिए। आपके पास से प्रेम का दरिया बहना ही चाहिए। प्रेम की बाती जलनी ही चाहिए। अहिंसा की कंदील जलनी चाहिए, करुणा की प्याली छलकनी चाहिए। व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने के लिए यह ज़रूरी है। और हम क्रोध करके ही सोचते हैं कि कुछ पाया, कुछ जीया अब हल्का हुआ। हमने केवल वासना और कामना की ही भाषा जानी है, यह न जाना कि निष्काम की भी कोई भाषा होती है। ब्रह्मचर्य की भी चेतना होती है।

मनुष्य की स्थिति बहुत दयनीय है। एक उत्तेजना जागती है और हम उसकी आपूर्ति कर लेते हैं। इस दयनीय स्थिति से उबरने के लिए ही भृगुपुत्रों का संदेश आपके लिए सार्थक हो सकता है। वे महात्याग के पथ पर चलने के लिए कृतसंकल्प हुए हैं, लेकिन सम्राट सोच रहा है उसने छोड़ा है मैं जाकर ले आऊँ। कोई दान दे रहा है तो मैं ले लूँ। इस दुनिया में दानदाता तो बहुत मिल जाते हैं, पर सही दान ग्रहण करने वाला सत्पात्र नहीं मिलता। जो होता है वह भिखारी जैसा होता है। सच पूछो तो यह कहना भी भिखारी का अपमान है। भिखारी में भी कुछ आत्म-सम्मान होता है। हम तो वह भी गिरवी रख चुके हैं। होना तो यह चाहिए कि दाता मिले सैकड़ों, पर लेने वाला कोई न हो। नौका में पहले ही बहुत पानी भरा है। और अधिक भरना डूबने की तैयारी है। इसलिए पानी भरो मत, जो भरा है उसे उलीच कर बाहर निकालो, उछालो, लुटा डालो।

केवल मंदिर जाना ही मंदिर की यात्रा नहीं है, रास्ते में मिले किसी दुखी के आँसू पौंछ देना भी परमात्मा की पूजा के समान है। तभी तो राजरानी ने सम्राट को लताड़ा और असार संसार असार रूप में समझ में आ गया। जब-जब भी स्त्री ने जीवन के शाश्वत मूल्यों को उपलब्ध करने के लिए पुरुष को लताड़ा, धरती पर नए-नए तुलसीदास जन्मते गए, नए-नए सम्राटों के फूल खिलते गए और जीवन का शाश्वत बोध उजागर हुआ।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी स्थिति में छः लोग महापथ की ओर बढ़ रहे हैं। वे नगर से बाहर जा रहे हैं। नगर के सभी परिजन उनके सामने खड़े हैं। जाते-जाते भृगुपुत्र अपनी ओर से एक संदेश दे रहे हैं-

जा जा वज्जइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ।
अहम्मं कुण माणस्स, अफला जंति राइओ।।

कहते हैं 'जो-जो रातें जा रही हैं वे वापस लौटकर आने वाली नहीं हैं। जो मनुष्य अधर्म कर रहा है उसकी रातें निष्फल चली जाती हैं।'

यह नहीं कहा कि अधर्म करने वाले के दिन निष्फल चले जाते हैं, वरन् यह कहा कि अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल चली जाती हैं। यह जीवन की मनोविज्ञान है। जैसा दिन होगा वैसी ही रात होगी। हर रात दिन का ही प्रतिबिम्ब है। दिन यदि धार्मिक हुआ तो रातें भी धार्मिक ही रहेंगी। जिनके दिन अधार्मिक होते हैं निश्चित ही उनकी रातें भी अधार्मिक ही होंगी। हमें रातों को सफल करना है। तुम्हारे लिए तो रातों को सफल करने का अर्थ हनीमून मनाना है। एक शहद टपकता हुआ चाँद, माधुर्य बरसाती चाँदनी और लोग समझते हैं यही जीवन का सुख है, रस है।

वेद कहते हैं 'रसो वै सः'- परमात्मा रस रूप है और आपको दाम्पत्य जीवन 'रसो वै सः' लगता है- यही फ़र्क़ है। पूनम का चाँद तो बहुत रस देता है, पर आज अमावस्या के घनघोर अंधकार में भी शहद टपका सकता है। किसी ने न कहा होगा कि रातें भी सफल हों क्योंकि तुम्हारी रातें निष्फल जाती हैं। दिन में तो जागे भी रहते हो, पर रात में पूरी तरह सोये हो। दिन में जिन चीज़ों को पढ़ा है जिन बातों को सिरजा है, रात में स्वप्न के रूप में उन्हीं को देखते हो और रातें दोषपूर्ण हो जाती है, सुषुप्त और स्वप्निल हो जाती हैं। कोई रात सत्य के समीप नहीं होती।

रात में स्वप्न चलते हैं। दिन में तो अगर चोरी भी करना हो तो दस दफा सोचते हैं कि कोई देख लेगा लेकिन सपनों में जो भी चाहे, जितना मन में आये लूट लो, पूरी दुनिया को लूट लो। अब दिन में तो आँखों को नियंत्रण में रखना पड़ता है, लोग बोलेंगे इधर-उधर घूर रहा है, कुदृष्टि रखता है पर रात में....! वह स्वतंत्र है स्वप्न में कुछ भी करने के लिए। पर मिलेगा क्या? सिवाय भ्रांतियों के! अपनी रातें निष्फल बना लोगे। दिन में तो फिर थोड़े-बहुत बचे रहोगे, पर रात में बेलगाम घोड़े बन गए। आत्म-नियंत्रण न रहा।

जो आत्म-विजेता और आत्म-नियंता होता है उसी की रातें सफल होती हैं। वह सपनों में रातें नहीं बिताता। स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए वह निद्रा लेता है, केवल सोने के लिए सोया नहीं रहता। दिन में अनेक संभावनाएँ रहती हैं, किसी से



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रेम किया, किसी पर क्रोध किया, किसी को क्षमा किया, किसी से क्षमा माँगी, लेकिन रात! रात में केवल शैतान जागता है इसलिए काम-भोग का शैतान ही मनुष्य पर सवार रहता है। सारा शरीर सो जाता है लेकिन भीतर का शैतान मनुष्य को आन्दोलित और उद्वेलित करता है।

बौद्ध धर्म शैतान को 'मार' कहता है और कामदेव के जितने नाम हैं उनमें 'मार' भी एक है। अब 'मार' का संधि-विच्छेद करते हैं, इसमें तीन अक्षर हैं- म+आ+र-अब इसे उलटिये र+अ+म= राम। जिसका दिन राम है उसकी रातें भी राममय होती हैं और जिसके दिन काममय हैं उसकी रातें कभी राममय नहीं हो सकती। या तो राम या मार।

जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम नहिं राम।
'तुलसी' दोनों ना रहे, राम काम इक ठाम।।

दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते या तो राम रहेगा या काम। हम सोचें कि एक ही पात्र में दूध और दही भी रह जाए, जहर और अमृत भी एक ही पात्र में रख लें, यह संभव नहीं है। हम अपना जीवन काममय जीना चाहते हैं और दस-पंद्रह मिनट के लिए 'राम-राम' कर लेते हैं। हाय राम! तुम्हें भी क्या जँची कि दस-पंद्रह मिनट के लिए राम-राम करने को तत्पर हो गए। अच्छा ही होता 'काम-काम' ही करते। मंदिर में जाते हुए भी तुम्हारी दृष्टि चंचल बनी रहती है। तुम वहाँ से भी जितेन्द्रिय होने का पाठ लेकर नहीं आते। जबकि मंदिर में प्रवेश करते हुए कहते हो 'निसिही-निसिही' और आते हुए कहते हो 'आवस्सहि-आवस्सहि'। मंदिर में जा रहे हैं संसार को छोड़कर, बाहर आ रहे हैं परमात्मा को अपने साथ लेकर! पर क्या सचमुच ऐसा हो पाता है?

तुम चंदन का तिलक लगाते हो किसलिए? क्या माथे पर ठंडक पहुँचानी है, नहीं। ठंडक तो क्रोध को क्षमा से, प्रेम से पहुँचानी है। लेकिन मैंने पाया है कि जो जितने बड़े-बड़े तिलक लगाते हैं वे उतनी ही बड़ी लड़ाइयाँ लड़ते हैं, आग-बबूला होते हैं, एक-दूसरे पर छींटाकशी करते हैं। प्रेम से, क्षमा से हमारा चित्त शांत होता है, तिलक इसलिए किया जाता है कि हे परमात्मा! मैंने तुम्हें स्वीकार किया, तुम्हारी वाणी को, तुम्हारे मार्ग को मैंने वरण किया।

'जो रातें व्यतीत हो जाती हैं वे पुनः लौटकर नहीं आती। जो मनुष्य अधर्म कर रहा है उसकी रातें निष्फल चली जाती हैं।'

हिंसा और अधर्म को मनुष्य ने अपना स्वभाव बना लिया है। जितनी क्रूरताएँ मनुष्य करता है, इस सृष्टि में अन्य कोई नही करता। आपने सुना होगा निकोलाई



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाऊ-शेस्कु जिसने रुमानिया में अस्सी हजार लोगों का कत्ल कर डाला, तंग शाओ फिंग, ली फांग जिसने चीन में श्येन-आन-मन चौक में पन्द्रह हजार विद्यार्थियों का खून बहा दिया, स्टेलिन जिसने छः करोड़ रूसियों को मौत के घाट उतार दिया, हिटलर ने पूरे विश्व में तहलका मचा दिया, जलियाँवाला बाग कांड का डायर, चंगेज खान, तैमूर लंग, नेपोलियन- इन सभी ने जघन्य क्रूरताओं का इतिहास रचा है। इनके कृत्यों के बारे में पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएँ। लेकिन यह सब क्यों हुआ? क्योंकि इनके दिन हिंसक थे, अधार्मिक थे। वे दिन-रात मानवता की हत्या में रत रहते थे। इसलिए उनके दिन भी निष्फल हुए और रातें भी निष्फल गईं।

हम अपनी रातों को सफल बनाना चाहते हैं तो अच्छा होगा कि दिनों को सफल करें। दिन आप सफल बनाइए, रातों को सफल बनाने में मेरी शुभकामनाएँ काम करेगी। भगवान करे आपकी रात्रि पूर्णतः सात्विक, पवित्र और निर्मल हो। भगवान आपकी रातों को दिन का प्रतिबिम्ब बनाए। दिन यदि उज्ज्वल होगा तो रात चाहे जितनी अंधियारी हो प्रकाश का संदेश लेकर ही आएगी। रात जितनी अंधियारी होती है, प्रभात उतना ही सुनहरा और प्यारा होता है। आप की रात और प्रभात दोनों उज्ज्वल हों, इसी शुभकामना के साथ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# मेरा पथ है मुक्त गगन

राजर्षि भर्तृहरि के जीवन की घटना है। वे नगर से दूर किसी पहाड़ी की चोटी पर ध्यानमग्न बैठे थे। ध्यान से उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने पहाड़ी से नीचे एक विशाल, अनुपम हीरा देखा। जिसे देखकर उनके मन में विचार आया कि राजकोष में तो न जाने कितने बेशकीमती हीरे हैं, लेकिन ऐसा अनमोल हीरा जिसकी आभा अप्रतिम है, यह तो अपनी तुलना में अतुलनीय है। भर्तृहरि के मन में आया कि मैं इस हीरे को ले लूँ। फिर विचार आया कि अरे मैं तो संन्यासी हूँ। मुझे हीरों से क्या काम, महामार्ग के पथिक को हीरों के लिए क्या लालायित होना। पर मन, यह तो चंचल है; हीरे को उठाने के लिए फिर प्रेरित करता है। उनके मन में इस तरह की उधेड़बुन चल रही होती है।

तभी वे देखते हैं कि पूर्व दिशा से एक सिपाही घोड़े पर सवार सरपट चला आ रहा है और उधर पश्चिम दिशा से भी एक सवार घोड़े पर बेलगाम दौड़ा आ रहा है। दोनों घुड़सवार उस बहुमूल्य हीरे के पास आकर रुक गए। दोनों ने तलवारें खींच लीं कि जो जीवित बचेगा वही हीरे का मालिक होगा। तलवारें चल पड़ीं, ख़ूब घमासान हुआ। अन्त में दोनों ने एक-दूसरे को तलवारें घोंप दीं। वहीं दोनों गिर पड़े। भर्तृहरि सारी घटना देख रहे थे। हीरा वहीं यथावत था लेकिन और उसे पाने को लालायित दो सिपाही अपनी जान गँवा चुके थे।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भर्तृहरि को वहीं पहाड़ी पर बैठे-बैठे साधनात्मक जीवन का नया सूत्र मिला कि वस्तु वही रहती है पर उसे पाने का भाव आ जाए तो जीवन और मृत्यु का प्रश्न खड़ा हो जाता है, किन्तु साक्षीभाव, दृष्टाभाव के उदय होने पर पाने की पीड़ा समाप्त हो जाती है। साक्षी-भाव में जीने पर उसके लिए सृष्टि में कोई पीड़ा, कोई आर्त भाव, कोई वेदना नहीं है। घटना हमें कुछ कहना चाहती है। घटना उन लोगों के लिए संदेश है, जो अपनी अन्तरात्मा के प्रति जागरूक और सचेत हुए हैं।

वस्तु के प्रति व्यक्ति की जितनी मूर्च्छा होगी, वस्तु व्यक्ति के द्वारा उतना ही मूल्य प्राप्त करती रहेगी। वस्तु का मूल्य है या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता लेकिन वस्तु अपना मूल्य व्यक्ति की आँखों से बढ़ाती है। यह मनुष्य की ही दृष्टि है कि उसने सोने को मूल्यवान बनाया और पीतल को हल्का, कम मूल्य का रखा। दोनों का रंग एक, दोनों में चमक एक, लेकिन एक निर्मूल्य और दूसरा मूल्यवान। मूल्य वस्तु का नहीं हमारी दृष्टि का है, और जब तक हमारी दृष्टि में वस्तु का मूल्य है तभी तक हम उसे इकट्ठा करते रहेंगे। परिग्रह अन्य कुछ नहीं, वस्तु के प्रति आसक्ति और मूर्च्छा ही है। जिस दिन वस्तु के प्रति मूर्च्छा टूट गई, वस्तु निर्मूल्य हो जाती है। महावीर और बुद्ध जो पूरे राज्य के स्वामी थे, जब जान ही गए कि ये सब आसक्ति और मूर्च्छा के साधन हैं, इन्हें तृणवत् त्याग कर मुक्ति-पथ के अनुगामी हुए। तुम तो पच्चीस-पचास लाख रखते हो बमुश्किल कुछ हजार छोड़ पाते हो और उन्होंने सम्पूर्ण राजवैभव, राजमहल और राज्य का त्याग किया। क्योंकि उन्होंने जान लिया कि जिसे मैं हीरा समझता था वह मेरी ही दृष्टि का भ्रम था, वह तो कंकर जैसा था। और जिस दिन हीरा कंकर जैसा दिखाई पड़ जाता है, अपने आप छूट जाता है।

आठ वर्षीय बच्चे की जेब में अगर काँच के कंचे हैं और आपकी जेब में हीरे हैं तो उस बच्चे की जेब से कंचे निकलवाना उतना ही कठिन है जितना आपकी जेब से हीरे। उसके लिए काँच के कंचों का मूल्य है, वह हीरे फैंक देगा मगर कंचों को संभालेगा और आप काँचों को पलक झपकते फैंक देंगे मगर हीरों को न फैंक पाएँगे। मूल्य हमारी दृष्टि देती है। बच्चे के लिए रेत का घरौंदा भी उतना ही मूल्यवान है जितना आपके लिए आपका मकान। वस्तु और व्यक्ति दोनों के बीच रेशम के धागों में बँधा ऐसा रागात्मक संबंध है जो व्यक्ति को बाँधे रखता है, वस्तु को मूल्य दिलवाता है। जिस दिन यह बोध हो जाता है कि वस्तु स्वयं में कोई मूल्य नहीं रखती, मेरे ही विभ्रम से, मेरे ही प्रमाद से मैं बंधा हुआ था उस दिन आपसे अपार संपदा, राजमहल, राजवैभव भी स्वत: छूट जाते हैं, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता।

मैंने सुना है कि एक व्यक्ति मारुति के शोरूम में पहुँचा और कहा मुझे आज ही मारुति जिप्सी चाहिए। प्रबंधक ने स्पष्ट इंकार कर दिया और बताया कि मारुति



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिप्सी के लिए कम-से-कम छः महीने प्रतीक्षा करनी होगी। लेकिन वह व्यक्ति बोला, तुम्हें जितना पैसा चाहिए मैं दूँगा, फिर भी प्रबंधक ने इन्कार कर दिया। आगन्तुक तैश में आ गया। वह अपने ब्रीफकेस में जो रुपये भरकर लाया था, वहीं उस प्रबंधक के सामने टेबल के नीचे रखी हुई रद्दी की टोकरी में डाल दिए और चला गया। प्रबंधक बहुत हैरान हुआ, थोड़ा चौंका भी कि जिप्सी के प्रति इतनी चाहत! जिप्सी को इतना पसंद करने वाला तो आज तक कोई न मिला। और इतना तैश, इतना क्रोध कि जिप्सी न मिली तो दो लाख रु. इस तरह रद्दी की टोकरी में फैंक दिए।

उसने कुछ सोचा और अपने कर्मचारियों को निर्देश दिया कि कल सुबह तक उस व्यक्ति के घर कार पहुँचा दी जाए। लेकिन साँझ होने पर वह प्रबंधक उस व्यक्ति के यहाँ दौड़ा-दौड़ा पहुँचा और जा कर कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है तुमने जो नोट रद्दी की टोकरी में डाले थे वे सब-के-सब नकली निकले। उसने कहा वे नकली थे इसीलिए तो मैंने रद्दी की टोकरी में फैंके थे। अगर असली होते तो अपने साथ वापस न ले आता।

नकली के नकलीपन का बोध होने से वह चीज छूट जाती है। नहीं तो किससे धन, सम्पत्ति और परिवार छूटते हैं? वह तो मूर्च्छित ही रहता है। लेकिन उससे छूट जाते हैं, जो जान लेता है कि माँ जन्म लेने का मार्ग भर है। जो जान लेता है कि मकान तो रेत का घरौंदा है और ये हीरे तो कंकर की तरह हैं, मैं ही इन्हें मूल्य दे रहा हूँ। वस्तु अर्थहीन हो जाती है जब व्यक्ति की दृष्टि उससे पलट जाती है। मैं संन्यास या वानप्रस्थ की बात कहता हूँ तो उसका एकमात्र अर्थ यही है कि तुम्हें रेत का घर घरौंदा लग जाए। तुम्हारे लिए हीरे काँच के कंचे हो जाएँ।

कल मैं एक कविता पढ़ रहा था जिसमें पक्षी को प्रतीक बनाकर जीवन, संन्यास और अध्यात्म तथा मुक्ति के सभी संदेश दिये गए थे। कवि ने गाया- पक्षी आसमान में उड़ता है, धरती पर आता है, रजकण, तृण, अन्न सभी के लिए अपनी यात्रा करता है, जब जहाँ चाहे वहाँ पहुँच ही जाता है। लेकिन अपने विभ्रम, अपने प्रमाद के कारण एक दिन पंछी पिंजरे में आ जाता है। उसे पता चलता है कि वह छला गया है, उसके साथ प्रवंचना हुई है। एक दिन पिंजरे का दरवाजा खुल जाता है। पंछी पुनःआकाश की ओर उड़ जाता है। वह जान लेता है कि आकाश, मुक्ति ही मेरे जीवन की एकमात्र स्वतंत्रता है, मेरे जीवन का संबल है, जीवन का मुक्ति-सुख है।

तुम अपना स्वर्ण-पिंजर रखो, मेरा पथ तो अब मुक्त गगन है। पंछी कह रहा है मालिक, तुम अपने इस सोने के पिंजरे को अपने ही पास रखो। अब मेरा पथ तो यह मुक्त आकाश है। मुक्ति ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य और मार्ग है।


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गत युग की याद दिलाते हो, था दुर्ग तुम्हारा वह उन्नत,
प्रासाद दुर्ग में वृहत्, और उसमें वह पिंजर स्वर्णावृत,
पर वे प्रतीक थे बंधन के आडम्बर गर्व प्रलोभन के,
मैंने तो लक्ष्य बनाए थे कुछ और दूसरे जीवन के,
अरमान विकल थे यौवन के तन बन्दी था मन था उन्मन,
तुम रखो स्वर्ण पिंजर अपना, अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।

मनुष्य का अंतिम पथ तो निर्वाण ही है, मुक्ति ही है, मोक्ष और आत्म-स्वतंत्रता ही है। जब कोई दूर खड़ा रहकर तुम्हें पुकारता है तो यह स्वर्ण-पिंजरे का आमंत्रण है। और हमारा मन आज ही नहीं जन्मों-जन्मों से सोने के पिंजरे में बार-बार आने का आमंत्रण देता है। जिसे यह बोध हो गया कि क्या सोने का पिंजरा, क्या लोहे का पिंजरा, पिंजरा तो पिंजरा है, उसी दिन वह हर बंधन को अस्वीकार कर देगा। लोहे के पिंजरे ही नहीं सोने के पिंजरे भी छोड़ दिये जाते हैं। ऐसा नहीं कि गोशालक ही त्याग करता है, महावीर और बुद्ध जैसे लोग भी त्याग करके निकल ही जाते हैं।

परिग्रह का संबंध न रखने से है, न त्यागने से है। परिग्रह तो एक छोटी-सी मुखवस्त्रिका और चिमटा के प्रति भी हो सकता है अन्यथा राजा जनक भी अपरिग्रही हो सकते हैं जिन्हें पूरे राज्य के प्रति आसक्ति और ममत्व नहीं होता। आसक्ति तो एक डंडे, एक लकड़ी से भी हो सकती है और अनासक्ति हो तो सम्पूर्ण राजवैभव भी विचलित नहीं कर पाता।

वस्तु जब तक अपना मूल्य बनाए रखती है, तभी तक व्यक्ति संसार में रहता है और जिस दिन व्यक्ति की नजरों में वस्तु से अधिक स्वयं का मूल्य हो जाता है, उस दिन वस्तु झूठी हो जाती है। जीवन में अनचाहे ही संन्यास घटित हो जाता है। वेश-परिवर्तन भले ही न हो, हम विरक्त हो ही जाते हैं। राग-द्वेष की चीनी दीवारें ढह ही जाती हैं। वीतद्वेष होने के लिए किसी प्रक्रिया से नहीं गुजरना होता, वीतरागता किसी साँचे में ढलकर नहीं आती।

मूर्च्छा और परिग्रह-बुद्धि के शिथिल होते ही वीतरागता अंकुरित होने लगती है। तुम अस्सी वर्ष के होकर भी पत्नी से नहीं छूट पाते और महावीर से पच्चीस वर्ष की उम्र में पत्नी छूट जाती है। क्यों? क्योंकि जान ही लिया कि दाम्पत्य-जीवन सिर्फ़ खिलवाड़ है। मन का खेल है, काया से काया की आँख-मिचौली है। जब तक मनुष्य देहभाव बनाये रखता है तब तक काया से काया का खिलवाड़ होता है। जिस दिन देह और आत्मा के अलग होने का ज्ञान हो जाता है, मैं अलग और मुझसे जुड़ी यह काया अलग, जब यह अंकुरण होता है, उसी अंकुरण का नाम है दीक्षा, संन्यास,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिनिष्क्रमण।

इस भेद-विज्ञान के प्रगट होने पर जीवन में अनासक्ति का आविर्भाव होता है, अन्यथा हम अधिकारों और संबंधों से जुड़े रह जाते हैं। हम अधिकारों के लिए लड़ेंगे, अधिकारों के लिए न्यायालय में पहुँचेगे। किसका अधिकार, कैसा अधिकार! वे ज़मीनों के टुकड़े, जिन पर तुम आधिपत्य जमाना चाहते हो वे वास्तव में जमीनें हैं भी? हर वह जमीन श्मशान-कब्रिस्तान है जिस पर तुम कब्ज़ा जमाना चाहते हो। अभी जिस स्थान पर तुम बैठे हो, विज्ञान कहता है इस दो वर्ग फुट जमीन पर पहले कम-से-कम दस लोग दफन किये जा चुके हैं या राख किये जा चुके हैं। तुम कब्रिस्तान और मरघटों पर अधिकार जमाने के लिए इतनी हाय-तौबा मचा रहे हो?

अधिकार की लालसा तो इतनी तीव्र है कि स्थानक, मंदिर जराजीर्ण हो जाएँ तब भी उन्हें तोड़ते नहीं क्योंकि अधिकार न चला जाए। मेरा तो निवेदन है कि जहाँ नए निर्माण कार्य हो रहे हों, वहाँ खंडहर हो चुके मंदिरों की प्रतिमाओं को स्थापित कर दो। उस जराजीर्ण मंदिर के कलात्मक पत्थरों को नवीन निर्माण में लगा दो, तुम्हारी वस्तुओं का उपयोग भी हो जाएगा और उनकी सुरक्षा भी। मेरे देखे, इस धरती पर जितना विनाश इस अधिकार-भाव ने किया है अन्य किसी ने नहीं किया। इसलिए उपयोग होना चाहिए। कब यह रेत का घरौंदा नीचे गिर पड़े और खंडहर हो जाए कुछ मालूम नहीं है। इसीलिए तो कहा है-

'तुम रखो स्वर्ण पिंजर अपना अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।
बंधन में फँसने के पहले, यह सत्य जान मैं था पाया।
नभ छाया है इस धरती की, धरती है इस नभ की छाया।
दोनों की गोद खुली चाहे मै नभ में मुक्त उड़ान भरूँ।
चाहे धरती पर उतर तृणों, रजकणों आदि को प्यार करूँ।
दोनों के बीच नहीं बंधन अवरोध दुराव परायापन।
तुम रखो स्वर्ण पिंजर अपना, अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।

मैंने जान ही लिया कि धरती और आकाश के मध्य न कोई बंधन है, न कोई दुराव है, न कोई परायापन है। भले ही धरती और आकाश के मध्य इतना फासला दिखाई देता हो, लेकिन जो आत्ममुक्ति का गीत गा चुका है,उसके लिए कहाँ धरती और आकाश के बीच दूरी। उसके लिए तो एकत्व है, दोनों के बीच समता है। दुराव नहीं है, आत्मा और परमात्मा के बीच, बंधन और मुक्ति के बीच। जैसे ही पिंजरे से बाहर निकले, पंख फैलाये, पूरा खुला आसमान है।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपना विभ्रम अपना प्रमाद, बँध गया एक दिन बंधन में।
वे दिन भी काट लिये मेंने, छल को पहचाना जीवन में।

'अपना विभ्रम अपना प्रमाद'– यह जीवन का सत्य है। एक मुक्त आत्मा आखिर संसार में उलझ कैसे गई!

अब तोड़ चुका हूँ मैं बंधन, कैसे विश्वास करूँ तुम पर।
तुम मुझे बुलाते हो भीतर, मैं तुम्हें बुलाता हूँ बाहर!

और आज जब मैं अपने बंधनों को काट ही चुका हूँ तब न जाने कितने लोग आते हैं, मोहित करते हैं, आमंत्रण देते हैं चले आओ। तुम प्रव्रजित होने को तैयार हो जाओ तो पता नहीं कहाँ-कहाँ से लोग तुम्हारे पास इकट्ठे हो जाएँगे और तुम्हें तरह-तरह के प्रलोभन देंगे। बड़ी-बड़ी समझाइश देंगे। क्यों दीक्षा लेते हो, घर में रहो भाई, क्या कमी है। कमाकर खा नहीं सकते क्या! हजार तरह की सलाहें। और अपने यहाँ तो बिना माँगे सलाह देने वाले लोग मिल जाते हैं। सलाह माँगने जाओ तो बोलें भी न, और बिना माँगे....। जब भी कभी अच्छा कार्य करने जाओगे तो सलाहें देंगे सगे भाई की तरह, फिर चाहे पूछें भी न। कहेंगे क्या करते हो, अरे रुक जाओ। दान करने पर कहेंगे क्यों देते हो ये ट्रस्टी लोग (या अन्य कोई भी दूसरे लोग) खा जाएँगे, क्यों दे रहे हो।

तपस्या करोगे तो कहेंगे - दिमाग खराब हुआ है भूखे मरते हो। दुनिया ऐसे कार्यों के लिए टोकती है जिनसे आत्ममुक्ति होती है। क्योंकि बँधा हुआ जीवन बंधन की ही प्रेरणा देगा। महावीर और बुद्ध भी संसार की प्रेरणा देते यदि वे संसार में रहते या बंधन में रहते। लेकिन जो निर्ग्रन्थ हो चुका है, जिसने खुले आकाश का रसास्वादन कर लिया है, जिसने खुली हवाओं और खुली फ़िज़ाओं का बोध पा लिया है, वह तो यही कहेगा, 'तुम रखो स्वर्ण पिंजर अपना, अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।'

मैंने तो इस बंधन को तोड़ ही दिया है, तुम बार-बार मुझे अपने पिंजरे में बुलाते हो और मैं यही आह्वान करता हूँ तोड़ो इन पिंजरों को, एक बार बाहर आकर देखो, खुद ही जान जाओगे आत्म-मुक्ति का आनन्द क्या होता है। जीवन के चालीस वर्षों में जो आनन्द पाया वह मुक्ति के आनन्द के समक्ष शून्य है। उसे भी तुमने आनन्द माना और यहाँ भी आनन्द पाओगे। वह आनन्द न था एक भ्रम था, यहाँ आनन्द की अनुभूति है। एक बार मुक्ति का स्वाद चख लो, फिर तो चौबीसों घंटे आनन्द, आह्लाद, परमधन्यता और परम पुरस्कार से भर जाओगे।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब तोड़ चुका हूँ मैं बंधन कैसे विश्वास करूँ तुम पर।
तुम मुझे बुलाते हो भीतर, मैं तुम्हें बुलाता हूँ बाहर।
देखो तो स्वाद मुक्ति का क्या, कैसा लगता है खुला पवन।
तुम रखो स्वर्ण पिंजर अपना, अब मेरा पथ तो मुक्त गगन
नभ भू से दुर्ग दूर मुझको प्रासाद दुर्ग से दूर मुझे।
पिंजर ले गया दूर उससे भी बनकर निष्ठुर क्रूर मुझे।

पंछी अपनी आपबीती बताता है कि क्यों मैं पुनः स्वयं को पिंजरे में नहीं ले जाना चाहता हूँ क्योंकि मैंने देखा कि किसी ने मुझे सोने के पिंजरे में ले जाकर रखा तो मैं दुनिया से कट गया, आकाश और धरती से कट गया। उस स्वर्ण महल में भी मुक्त न रहा, वहाँ भी पिंजरा था, उसमें कैद हो गया। मेरे मुक्ति के गीत, मेरे उन्मुक्त पंख पिंजरे में बंद हो गए। अब मैंने बाहर आकर जान लिया कि मुक्ति ही मेरा पथ है। मैं बार-बार आह्वान करता हूँ मालिक तुम भी इन पिंजरों से बाहर आ जाओ।

तुम अपने रेत के घरोंदों से, वस्तुओं के प्रति रहने वाले ममत्व और मूर्च्छा से बाहर आ सकते हो तो मेरा निमंत्रण है।

फिर सबके पास लौट आया अब धरती मेरी, नभ मेरा।
रजकण मेरे द्रुम तृण मेरे, पर्वत मेरे सौरभ मेरा।
वह सब मेरा जो मुक्ति मधुर वह रहा तुम्हारा जो बंधन।
तुम रखो स्वर्ण-पिंजर अपना, अब मेरा पथ तो मुक्त गगन।

मैं तो इतना मुक्त हो चुका हूँ कि सारी धरती मेरी है। जहाँ चाहूँ पहुँच जाऊँ। सारा आकाश ही मेरा है। तुम्हें तुम्हारे बंधन मुबारक हों, तुम्हारे स्वर्ण-पिंजर अपने ही पास रखो, मेरा पथ तो अब मुक्त आकाश रहेगा। लेकिन यह तभी होगा जब व्यक्ति की दृष्टि में अपना मूल्य अधिक और वस्तु का मूल्य कम होगा। तब ही मालकियत कायम हो सकती है। तब ही हम स्वयं के भी मालिक हो सकते हैं अन्यथा संन्यास भी ले लोगे, साधु भी बन जाओगे, लेकिन तब भी स्वयं को परतन्त्रता-जनित अंकुशों से घिरा पाओगे।

यह तो महामार्ग का पथ है तब क्यों न समाज से भी अतीत हो जाओ, संसार से भी अतीत हो जाओ। जब संसार ही त्याज्य है तो बाहर के लगाए गए ये अंकुश भी त्याज्य हो जाएँगे। आज का सूत्र संक्षेप में हमें यही कहता है।

मेरे लिए तो आत्म-मुक्ति ही संन्यास का अर्थ है, दीक्षा का अभिप्राय है, प्रव्रज्या की वास्तविकता है। आज का सूत्र है-


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रागोवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियायरक्खिए।
पन्ने अभिनूय सव्वदंसी, जे कम्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू।

महावीर कहते हैं भिक्षु कौन है? जो राग से उपरत है, संयम में तत्पर है, आस्रव से विरक्त, शास्त्रविद्, प्राज्ञ, और आत्मरक्षक है, जो सभी को अपने समान देखता है किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होता, वह व्यक्ति भिक्षु है। महावीर ने भिक्षु की जो परिभाषा दी है, उसके जीवन के ये चरण बताए हैं कि वह राग से उपरत है, वह संयम में तत्पर हो चुका है, वह आस्रव से विरक्त हो चुका है, वह सभी को अपने समान देखता है, वह किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होता, मूर्च्छित नहीं होता।

'भिक्षु' शब्द महावीर का दिया हुआ है। लेकिन बाद में इसे बौद्धों ने भी स्वीकार किया। बोधि, संबोधि और संबुद्ध भी उत्तराध्ययन सूत्र में कई बार प्रयुक्त हुए हैं। लेकिन लोग मानते हैं कि ये बौद्ध-परम्परा के शब्द हैं। हम भूल ही चुके हैं कि महावीर भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं जो बाद में बौद्धों ने अपनाए। अब शब्दों पर किसी का एकाधिकार तो है नहीं। भाषा तो भाषा है, शब्द भी वहाँ रहते हैं, पर हमारा ध्यान अर्थों की ओर होना चाहिए। अर्थ-गम्भीरता में सारे शब्द स्वीकार कर लो फिर वे चाहे किसी भी परम्परा से आते हों। 'सार-सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय।'

एक शब्द है 'भिक्षु' दूसरा है 'भिक्षुक'। भिक्षु का अर्थ होता है मुनि, संत और भिक्षुक से तात्पर्य है भीख माँगने वाला, भिखारी। भिक्षु वह है जो वस्तुओं को त्याग देता है और भिक्षुक त्याग की गई वस्तुओं को स्वीकार करने के लिए लालायित रहता है। इसलिए भिक्षुक का काम है माँगना और भिक्षु का कार्य है लुटाना। एक व्यक्ति जो दिन भर लुटाता है वह रात्रि को सुखपूर्वक सोता है और जो दिन भर बटोरने में लगा रहता है वह रात में शांति से सो भी नहीं सकता।

महावीर जैसे लोग अगर वर्षीदान कर रहे हैं तो यही देख रहे हैं कि आज दिन भर मैंने कितना अधिक लुटाया और शाम को जब सोते हैं तो आनन्द की नींद लेते हैं। भीख माँगने वाले लोग, दूसरों से दान की इच्छा रखने वाले लोग जब तक कुछ पा नहीं जाते, न चैन से रोटी खाते हैं, न चैन से सो पाते हैं। जब कोई मेरे पास सहयोग, दान की आकांक्षा से आता है तब मैं उसे स्पष्ट बता देता हूँ कि मैं दान तो नहीं दे सकता, हाँ सहयोग जरूर कर सकता हूँ। सहयोग भी यह नहीं कि मुफ़्त में रोटी खाओ बल्कि यह सहयोग कि तुम मेहनत से काम करके अपनी रोटी कमा सको इसकी व्यवस्था अपने परिचय, अपनी पहुँच से अवश्य करवा सकता हूँ। तुम अपने बाजुओं से कमाकर खाओ, माँग कर नहीं। माँगकर खाना भिखारियों का काम है,



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह भिक्षुक का काम है और मेरी प्रेरणा भिक्षुक होने की नहीं भिक्षु होने की है।

राग से ऊपर उठो, संयम में तत्पर बनो, आस्रव से विरत हो जाओ और अपने समान ही औरों को देखने का प्रयास करो। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना से अभिभूत हो चलो और किसी भी वस्तु के प्रति अपनी आसक्ति मत रखो। ऐसा होने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से ज्ञानियों की दृष्टि में भिक्षु है, संत है। मैं भी यही कहना चाहूँगा कि अगर आप राग से ऊपर उठ सकें, वस्तुओं के प्रति अपनी आसक्ति को निर्मूल्य कर सकें, अपने कामास्रवों को, अपने भावास्रवों को, अपने दृष्टास्रवों को, अपने अविद्यास्रवों को अगर कम कर सकें तो भिक्षु होने के संत होने के, प्रथम चरण में प्रवेश हो ही गया समझो। हर किसी को अपने समान देखने का प्रयास करो, जानो कि जैसा मैं हूँ वैसा ही दूसरा भी है अगर तुम जान रहे हो कि तुम आत्मा हो तो दूसरों में भी आत्मा देखने का प्रयास करो। अगर स्वयं में प्रभु और परमात्मा दिखाई दे रहा है तो औरों में भी प्रभु और परमात्मा देखने का प्रयास करो।

सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो, सबमें प्रभु के दर्शन करो। मेरा यही संदेश है कि सबसे प्रेम करो। यह मेरा पहला सूत्र है, दूसरा सूत्र है सबकी सेवा करो और तीसरा सूत्र सब में प्रभु दर्शन करो। ये तीनों सूत्र अध्यात्म-सूत्र हैं। ये तीनों सूत्र आपका जीवन बदल देंगे। आपके जीवन को ऊँचा उठाएँगे और तब आपका बाह्य रूप कुछ भी हो अन्दर से आप संत होंगे, भिक्षु होंगे।

हमें विषयों से अनासक्त होकर मुक्तिलाभ के लिए कृत-संकल्प होना चाहिए। आत्मा को साधु बनाना है तो पहला काम है निर्भय बनो। न कभी किसी से डरो और न ही सम्मान और प्रतिष्ठा से इतराओ। अमीर-गरीब के भेद से ऊपर उठो। मुक्त मन से जीओ। वह व्यक्ति भिक्षु है जो निरन्तर एकरस अपनी साधना में, मस्ती में स्व की खोज में लगा रहता है। आत्मलक्ष्य की दिशा में मंगलयात्रा हो, यही अभीष्ट है, यही भिक्षुत्व है, यही मुक्ति की ओर उड़ान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# फिर मुक्ति के पंख खुले

*प्रश्न है : पार होने के लिए जीव को पहले क्या जानना चाहिए? जीव के परिभ्रमण के मुख्य कारण क्या हैं? ये कारण कैसे दूर हों? इसके सुगम-से-सुगम उपाय क्या हैं? इसका समाधान करने की कृपा करें।*

पार होने के लिए जानने को बहुत कुछ जाना जा सकता है। बहुत कुछ जाना जा चुका है, लेकिन जितना जाना है उससे सौ गुणा अधिक हम जानने से अनजान हैं। एक तो जानना होता है बौद्धिक और दूसरा होता है आत्मिक– अपनी ही अनुभूति से जाना गया ज्ञान। बौद्धिक ज्ञान बाहर से भीतर आरोपित होता है और आत्मिक ज्ञान, आनुभविक ज्ञान भीतर की चट्टानों से फूटने वाले झरने का नाम है।

संसार में ज्ञान तो बहुत है, मगर सारा ज्ञान बौद्धिक है, किताबों से बाँचा गया ज्ञान है। स्वयं में तलाशा एवं तराशा हुआ ज्ञान नहीं है, स्वयं में उघाड़ा हुआ ज्ञान नहीं है। ज्ञान अगर स्वयं में उघड़ जाए तो फिर कोई फ़र्क़ दिखाई न देगा। इन ईंट- चूने के महलों और ताश के पत्तों के महल में क्या फ़र्क़ है? चूने-पत्थर का महल गिरने पर जैसे प्रौढ़ व्यक्ति उदास हो जाता है, उसी तरह ताश का महल गिर जाए तो बच्चे उदास हो जाते हैं। बच्चे अभी प्रौढ़ नहीं हुए हैं। इसलिए चूने-पत्थर का महल गिरने पर वे उदास नहीं होते और जो प्रौढ़ हैं, वे ताश के पत्तों के महल का मिथ्यात्व जानते हैं, इसलिए ऐसा महल गिरने का उन पर कोई प्रभाव नहीं होता। मगर इसका उल्टा होने पर दोनों उदास हो जाते हैं, प्रौढ़ भी और बच्चा भी।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों के चेहरों पर उदासी आ जाती है। उनके अन्तर्मन में उदासी घिर जाती है। जैसे महल गिरने पर शहर भर में कोहराम मच जाता है, ऐसे ही ताश का घर गिर जाए, तो बच्चे कोहराम मचा देते हैं। यहाँ ज्ञान का ही अंतर है। असली ज्ञान वही है जो जीवन में बदलाव लाता है। वास्तविक विचार तो वही होता है जो जीवन में विराग ले आए। सही चिन्तन वही होता है जो चेतना को जगा सके, विवेक की दृष्टि दे सके। सुनना तभी सम्यक् श्रवण हो पाता है जब वो हमारे जीवन में सम्यक् दृष्टि की आधारशिला बन जाए। यदि ऐसा नहीं होता तो आदमी का ज्ञान केवल किताबी ज्ञान बन कर रह जाता है। सारा ज्ञान बाँचा हुआ ज्ञान होता है, केवल सूचनाओं का संग्रह भर होता है।

ज्ञान का सीधा-सा फार्मूला यही है कि आप केवल नक्शे के दर्शन कर हिमालय की यात्रा का लाभ नहीं उठा सकते। नक्शा देखने से केवल हिमालय पर जाने के मार्ग का पता जाना जा सकता है। आनंद तो तभी आएगा, जब आप स्वयं हिमालय की यात्रा करेंगे। ऐसा आनंद और ज्ञान ही जीवन का वास्तविक आनंद और ज्ञान होगा। किताबों को पढ़ कर पाया गया ज्ञान हमें कर्म करने के लिए प्रेरित कर सकता है। एक ज्ञान तो वह होता है जो हमें किसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है और एक ज्ञान वह होता है जो किसी मार्ग पर चलने से निष्कर्ष रूप में प्राप्त होता है। वही असली ज्ञान होता है।

हमारा जो ज्ञान, हमें ज्ञान व विज्ञान की ओर प्रेरित कर दे, वो ज्ञान मनुष्य को मुक्ति देता है और जो ज्ञान हमें कर्म की ओर प्रेरित करे, वो ज्ञान हमें सृजन की ओर ले जाता है। बाहर से लिया गया ज्ञान, संसार की आधारशिला हो जाता है और भीतर से निष्पन्न हुआ ज्ञान, मुक्ति का मार्ग हो जाता है।

बौद्धिक ज्ञान जीवन के साधनों को संचालित करने के लिए है और आत्मिक ज्ञान व्यवहार व निश्चय, दोनों ही विरोधाभासों से अपने आपको मुक्त करने के लिए है। ज्ञान तो मनुष्य के पास है, लेकिन मनुष्य उस ज्ञान के अनुरूप आचरण नहीं करता, क्योंकि यह ज्ञान आरोपित है, उधार का है। बाहर से अर्जित है। जैसे कोई बाँझ स्त्री किसी बच्चे को गोद ले लेती है, ऐसे ही हमने ज्ञान को भी गोद ले लिया है। इसका नतीजा यह हुआ कि मनुष्य को इस बात का तो ज्ञान है कि क्रोध करना बुरा है, मगर आदमी इस ज्ञान को अपने आचरण में नहीं उतार पाता। अगर कुम्हार को घड़े बनाने का ज्ञान है तो वह भी चौबीस घंटे तो घड़े नहीं बनाता। सोने के वक़्त सोना भी पड़ता है। लेकिन जो ज्ञान अपने ही अन्तर्जगत से अनुस्यूत होता है, अपनी ही अन्तर-आत्मा से विकसित होता है, मनुष्य उस ज्ञान को चौबीस घंटे जी सकता है, क्योंकि आत्मज्ञानी चौबीसों घंटे चैतन्य रहता है, जागृत रहता है। सोए, तब भी जागा



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहता है। आँखें बंद होने पर भी भीतर की आँखें खुली रहती हैं।

सच्चे ज्ञानी व्यक्ति के लिए सूर्य कभी अस्त नहीं होता,उसका सूरज तो हमेशा जागृत रहता है लेकिन जिस ज्ञान के नाम पर केवल ज्ञान की सूचनाओं का संग्रह भर किया है, वह जागते हुए भी सोया हुआ है। वह कर्म कर रहा है, तब भी सोया हुआ है। उस आदमी के जीवन में सूरज कभी उगता ही नहीं है। आम तौर पर सूर्य रोजाना सुबह पूरब से निकलता है और शाम को पश्चिम में अस्त होता है, मगर ऐसे आदमी के जीवन में न तो सूर्योदय होता है और न ही सूर्यास्त। वह तो धोबी के कुत्ते की तरह घर से घाट तक का सफर ही करता रहता है, मगर न तो वह घर का होता है और न ही घाट का। उसके जीवन का सूर्योदय घाट की ओर होता है और सूर्यास्त घर की ओर।

वह ज्ञान, वह चेतना जो विज्ञान की ओर बढ़ जाए, जो चेतना आनंद की ओर बढ़ जाए, वो चेतना मनुष्य को मुक्ति दे जाती है। मुक्ति पाने का यह सबसे सुगम व सरलतम उपाय है। यह मुक्ति का मंत्र है, मुक्ति की आधारशिला है। हमारा मन और हमारी चेतना हमारे प्राणों की ओर, हमारे शरीर की ओर बह जाए, तो यही चेतना, यही आत्मा, यही कर्म, यही क्रिया हमारे लिए संसार का निर्माण करती है और अगर पूछते हो कि पार होने के लिए जीव को क्या जानना चाहिए, तो मैं यह कहूँगा कि जानने की आदत छोड़ो, क्योंकि जान-जान कर कोई भी ज्ञानी नहीं हो पाया। जानकर कोई व्यक्ति प्राणवंत आत्मवान नहीं हो पाया है। जान-जान कर व्यक्ति पण्डित जरूर हो जाता है। किसी व्यक्ति ने मुझसे कहा कि मेरा तोता राम-राम करता है। बड़ा पण्डित है। मैंने कहा कि सच कहते हो, आज यही हो रहा है। पण्डित और तोते में कोई फ़र्क़ ही नहीं रह गया है। जैसे तोता बोलता है, वैसे ही पण्डित बोलता है। पण्डित तो वह चम्मच है, जो दाल के हलवे में जाता है, लोगों को पुरसगारी करता है, मगर ख़ुद चम्मच के पेट में कुछ नहीं जाता। पण्डित का यही हाल है। वह ज्ञान रूपी हलवे में रहता है। मगर ख़ुद उसका पेट ज्ञान से नहीं भरता वह रिक्त ही रहता है। थोड़ा-सा हलवा भी उस चम्मच से चिपक जाए तो उसका जीवन धन्य हो सकता है। ज्ञान जीवन में उतरे, तो ही साक्षरता सार्थक है। पुस्तकों को रटो मत, उनसे जीवन बनाना सीखो। पुस्तक से ज्ञान नहीं, केवल जानकारी मिलती है। प्राप्त जानकारी का सम्यक् उपयोग करने से ज्ञान अपना होता है।

ज्ञान औरों को देने के लिए नहीं होता। ज्ञान औरों से पाया भी नहीं जा सकता। अगर कोई सोचे कि मैं उसे ज्ञान दे दूँगा तो वह गलती पर है। मैं किसी को ज्ञान नहीं दे सकता। हाँ, अगर आप मुझसे ज्ञान ले जाएँ तो यह आपकी सजगता व सचेतनता होगी। कोई किसी को ज्ञान दे नहीं सकता। कोई ज्ञान ले जाए तो यह उसकी विशेषता होगी।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानने की आदत छोड़ो, जाना तो बहुत है कि पतवारें कैसे चलाई जाती हैं। हर आदमी को धर्म-कर्म का ज्ञान बहुत है। जैसे अधिक खाने से अजीर्ण हो जाता है, उसी तरह अधिक ज्ञान भी अजीर्ण का कारण बनता है। यह मत सोचो कि औरों के पास जाएँ और पूछें कि पतवारें कैसे चलाई जाती हैं, नौका कैसे खेयी जाती है। अब तो सिर्फ़ लंगर खोलने की ज़रूरत है। पार होने के लिए जानने की ज़रूरत नहीं है, केवल लंगर खोलने की ज़रूरत है। पतवारें तो पूरी ज़िन्दगी चला ली, आज तक पार नहीं हुए। अब अगर कुछ करना है तो मूर्च्छा के लंगर खोलो।

धर्म की, पुण्य की पतवारें तो वर्षों से चला रहे हो, पर अगर जीवन की नौका कहीं पहुँच नहीं पा रही है, तो पहले यह पता लगाओ कि क्या चीज आड़े आ रही है। कौनसी कमी है जिसके कारण नौका आगे नहीं बढ़ रही है। ऐसा ही हुआ। चार शराबी चाँदनी रात में नौका-विहार करने गए। शराब का नशा! रात भर पतवारें चलाते रहे। जब सुबह करीब आई तो थोड़ा नशा उतरा तो एक ने दूसरे से पूछा कि जरा पता करो कि हम कितनी दूर का सफर कर चुके हैं। उसने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि नौका किनारे पर पहुँच चुकी थी। यह तो बाद में मालूम हुआ कि नाव का लंगर डाला हुआ था, सो नाव कहीं गई ही नहीं, वो एक जगह ही खड़ी थी। रात भर पतवारें चलती रहीं। लेकिन फायदा कुछ न हुआ, क्योंकि आख़िर पहुँचे तो कहीं भी नहीं। जहाँ से रवाना हुए थे, वहीं रह गए। इसलिए जीवन का लंगर खोलो। जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों को आत्मसात् करने के लिए जानने की नहीं, लंगरों को खोलने की ज़रूरत है।

जीवन के परिभ्रमण होने के मुख्य कारण क्या हैं? मुख्य कारण है व्यक्ति ने लंगर नहीं खोला। व्यक्ति ने जंजीरें और बेड़ियाँ नहीं खोलीं। इसका कारण भी है। बेड़ियों की, जंजीरों की झंकार बड़ा सुख देती है, बड़ा रस देती हैं, आनन्द देती है।

किनारे पर आदमी सुरक्षित है। नदी में उतरोगे, तो तूफान का डर भी रहेगा, मगर नदी में उतरे बगैर पार कैसे होओगे? तब जंजीरों को खोलना पड़ेगा, बेड़ियों को तोड़ना पड़ेगा। मनुष्य की परेशानी यही है कि उसके पाँव जकड़े हुए हैं। इतनी आसक्ति है कि व्यक्ति प्रार्थना तो वीतरागता की करता है, मगर अपने पाँवों में पड़ी बेड़ी को नहीं तोड़ पाता। अगर लंगर न खुला तो नौका तो चलने से रही। तब पतवारों का कोई अर्थ ही नहीं है। आपका कोई मार्गदर्शन करने को तैयार है, मगर आप कदम ही नहीं उठा रहे हो तो उसका मार्गदर्शन आपके किस काम का।

आदमी ने ज़िन्दगी को खिचड़ी बना दिया है। हम क्रोध भी करना चाहेंगे और क्षमा से भी ममत्व रखेंगे। हमारा जीवन पूरी तरह विरोधाभास पर चलने लगा है। ज्ञानियों ने एक शब्द दिया है व्रत। अब जिनको 'गलियाँ' निकालने में महारथ



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हासिल है, उन्होंने यहाँ भी कई रास्ते निकाल लिए हैं। लोगों ने अणुव्रत और महाव्रत जैसे शब्द ईजाद कर लिए। अब जरा विचार करें, व्रत तो आखिर व्रत होता है, वह 'अणु' और 'महा' कैसे हो सकता है। व्रत का अर्थ है 'विरत' होना, अलग होना, अब आप थोड़े अलग होते हैं या पूरे अलग होते हैं, यह आप स्वयं पर निर्भर है। अगर मन में अभी इच्छा बनी हुई है कि हम यह भी कर लें और वह भी कर लें तो अच्छा होगा कि जिसको छोड़ने का मन में संकल्प कर रहे हो, पहले जी भर उसका सेवन कर लो ताकि परितृप्त हो जाओ। जीवन में उस चीज के प्रति संकल्प या विकल्प ही मन में न उठे।

एक आदमी भोग करता है, मगर अटक जाता है, जबकि दूसरा भोग करता है और पार हो जाता है। यह अंतर क्यों है? जो भोग में अटक गया, वह संसारी हो गया और जो पार हो गया वह संन्यासी हो गया। कोई भी भोग बुरा नहीं होता, मगर जब कीचड़ में पैदा होकर कीचड़ में धँसे रह जाते हो, तो वह भोग जीवन का अभिशाप बन जाता है। महावीर ने विवाह किया, संतान भी हुई। उन्होंने भोग किया, मगर अटके नहीं, पार हो गए। जो अटक गया वो उलझ गया। फिर तो उसका सारा ज्ञान अपने भीतर के अज्ञान को ढकने का एक पर्दा भर रह जाता है।

पार लगो तभी तो ज्ञान का अर्थ है। ऐसा ज्ञान किस काम का जो दूध और पानी को अलग-अलग करने की कला न दे सके। उस हंस में ज़रूर कोई खोट है जो दूध में मिला पानी अलग न कर सके। हमारे भीतर आसक्ति है, राग है, ममत्व है। छोड़ने के विकल्प भी होते हैं, मगर आदमी इन्हें नहीं छोड़ पाता। सुख भले ही क्षणिक हो, वह हमें आभास देता रहता है। सुख आह्वान करता है बार-बार कि चले आओ उसी अंधेरे में। आदमी जीता तो प्रकाश में है, मगर भीतर का घुप्प अंधकार बार-बार आवाज़ देता है। और आदमी को अंधकार ज्यादा अच्छा लगता है। कल जिस खुजली से पीड़ा हुई थी, आज वही खुजली फिर खुजलाने का निमंत्रण देती है।

आदमी को खुजलाने में बड़ा आनंद आता है। जब खुजली उठती है तो सारा ज्ञान एक तरफ धरा रह जाता है। खुजलाना उसके लिए ज़रूरी हो जाता है। बिना खुजलाए उसे चैन नहीं पड़ता। यह जीवन का यथार्थ है। आप पूछना ही चाहते हो कि पार लगने से रोकने वाली क्या चीज है, तो मैं यही कहूँगा कि हमारी आसक्ति ही हमें पार नहीं लगने देती। हमारे अपने ही बनाए लंगर जीवन की नौका को रोक कर बैठे हैं।

जब आसक्ति का अंधकार उभरता है तो कुछ भी नज़र नहीं आता। जिस बीवी से झगड़ा कर आए हो,उस झगड़े को भूल कर फिर उसी अंधकार में लौट जाओगे। जिस धन ने चैन छीन लिया, उसी धन को कमाने के लिए घाणी के बैल बन जाओगे।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आखिर धन कमाना है तो उम्र भी नहीं देखते। अस्सी-नब्बे साल के हो गए, मगर दुकान से मोह नहीं छूटा। कब तक यही करते चले जाओगे? कहीं तो विराम दो वत्स! तीस वर्षीय एक युवक आजीविका कमाने के लिए मेहनत करता है, ठीक बात है। मगर अस्सी साल का वृद्ध भी जुटा हुआ है। सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक जुए के बैल की तरह लगा है। ऐसे आदमी से पूछो कि आखिर तुम्हारे जीवन का विराम कहाँ है? जितना कमाना था, कमा लिया, ऐश करना था, कर लिया, अब तो यह दुकान समेटो। शरीर को ही कब तक मलते रहोगे। शरीर के पार जो पारदर्शी तत्त्व है, उस तक तुम्हारी नज़र नहीं जाती। हम केवल बाहर-बाहर ही जीते हैं, ऊपर-ऊपर की लीपापोती करते रहते हैं। मैं आपको कैसा दिखाई देता हूँ, इस बात पर गौर मत करिए, आप अपने आपको कैसे दिखाई दे रहे हैं, इस पर गौर फरमाइएगा क्योंकि उसी से आपका कल्याण होगा, आपके जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा।

जीव के परिभ्रमण के मुख्य कारण क्या हैं? और ये कारण कैसे दूर हो सकते हैं? व्यक्ति स्वयं कारण बनता है और कोई दूसरा इसे दूर कर भी नहीं सकता। व्यक्ति को स्वयं ही मुक्त होना होता है। हमें कोई बाँध नहीं सकता। दुनिया में किसी की ताक़त नहीं है कि कोई आपको बाँध जाए। व्यक्ति खुद ही बँधता है। अगर कोई दरवाजे को पकड़ कर बैठ जाए और चिल्लाने लगे कि बचाओ बचाओ। यह दरवाजा मुझे नहीं छोड़ रहा है, तो इसमें किसकी गलती है। दरवाजे को तो तुमने ही पकड़ रखा है। दरवाजे की क्या मज़ाल कि वह तुम्हें पकड़ सके।

यह मत सोचो कि आप मर गए तो पीछे आपकी पत्नी भी मर जाएगी, आपके माँ-बाप मर जाएँगे। कोई नहीं मरने वाला। विवाह किया है, कर्तव्य जरूर निभाओ, माँ-बाप भले कंजूस हैं, चिड़चिड़े हैं, फिर भी निभाओ। कर्तव्य तो यही कहता है। मगर हमने हमारा मूल्य, माँ-बाप से ज्यादा मान लिया है। हमारा मूल्य, अपनी पत्नी से अधिक मान लिया है। माता-पिता तो हमारे लिए जन्म देने का एक मार्ग भर रहे हैं। जन्म हमें लेना था। पिता के अणु व माँ का गर्भ मिला। हमारा जन्म हो गया। शरीर का पिता होता है और शरीर की ही माँ होती है। पर हमारा न कोई पिता होता है, न माँ होती है, न पत्नी होती है। जब तक हम देह-भाव में जीते हैं, जब तक देहभाव हम पर आरूढ़ होता है, तब तक पत्नी का भाव भी रहता है और जब देह का भाव शांत हो जाता है तो वह पत्नी नहीं रहती, वह एक महिला हो जाती है। तब माँ भी एक महिला है, पत्नी, बहन भी एक महिला। पिता एक पुरुष है तो बेटा भी। तुम स्वयं एक पुरुष हो। सारे पुरुष और महिलाएँ एक जैसे हैं। जब तक देह का भाव रहता है तब तक स्त्री-पुरुष के भेद रहते हैं। जब हम देह से देहातीत हो जाते हैं, विदेह की स्थिति में



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीते है, तब न कोई स्त्री होती है और न कोई पुरुष। न किसी को गले लगाया जाता है और न किसी से परहेज किया जाता है।

परहेज़ उन लोगों के लिए होता है, जिनकी आँखों में यह पहचान बनी हुई है कि यह स्त्री है और यह पुरुष है। अगर स्थूलिभद्र जैसे लोग इस तरह पहचान बनाए रखते तो वह किसी भी स्थिति में 'कोशा वेश्या' के यहाँ बेदाग चातुर्मास, निष्कलुष प्रवास नहीं कर पाते। संभव ही नहीं होता। अध्यात्म और कुछ नहीं है, केवल देह के प्रति रहने वाले भाव से छुटकारा पाना है। अगर देह के प्रति रहने वाला भाव समाप्त हो जाए, तो 'ये खाऊँ, वो खाऊँ' की रट भी बंद। देह के प्रति भाव गौण हो जाए तो कौन कुरूप और कौन स्वरूप। और जब तक देह का भाव नहीं छूटता, तब तक व्यक्ति तपस्या तो खूब कर लेगा, मगर आहार के प्रति रहने वाली आसक्ति नहीं छूटेगी। आहार छोड़ना या उससे सम्बन्ध रखना महत्त्वपूर्ण नहीं है। मेरी नजर में तो आहार के प्रति रागात्मक और विद्वेषात्मक दोनों भाव समाप्त होना ही वास्तविक त्याग-तपस्या है। व्यक्ति के लिए वही वास्तविक उपवास बन जाता है, जब आहार के प्रति रहने वाली आसक्ति भी छूट जाए। ऐसा नहीं हुआ, तो साल में एक बार संवत्सरी आएगी और क्षमापना भी कर लोगे, मगर बाकी के 364 दिन वही वैर-विरोध के रहेंगे।

आदमी के मन में राग समाप्त हो जाए, देहभाव समाप्त हो जाए, चित्त शांत हो जाए तो आदमी रोजाना ही 'क्षमापना' में ही जीता है। उसे न तो किसी को क्षमा करने की जरूरत पड़ती है और न किसी से क्षमा माँगने की, क्योंकि उसके द्वारा कभी कोई वैर-विरोध ही नहीं। वो अगर कभी गलती करता भी है, तो इतनी सजगतापूर्ण कि उससे उसके कर्मों की निर्जरा हो जाए, वह पार लग जाए, निवृत्त हो जाए। अगर व्यक्ति की आसक्ति के तार ढीले पड़ जाते हैं, तो मकड़ी बाहर आ ही जाती है। अन्यथा जो मकड़ी औरों को फँसाने के लिए जाल बुनती है, जाल बुनते-बुनते आसक्ति के तार इतने रसीले, प्यारे हो जाते हैं कि मकड़ी खुद उन्हीं तारों में उलझकर रह जाती है। अगर आसक्ति के ये तार ढीले होने हैं तो अपने आप ही होंगे। कोई बाहर से नहीं आएगा, इन्हें ढीला करने। हमें किसी ने बाँध नहीं रखा है, व्यक्ति स्वयं ही बँधा हुआ है। व्यक्ति स्वयं ही बँधता है।

अगर तुम स्वयं से मुक्त हो गए तो समझो तुम दुनिया से मुक्त हो गए। पार तुम्हीं को लगना है इसलिए लंगर भी तुम्हीं को खोलना होगा। इस काम के लिए कोई बाहर से नहीं आएगा। मैं सिर्फ़ यह बता सकता हूँ कि यह नाव है जीवन की, यह पतवार है, यह सागर है संसार का, यह लंगर है, लेकिन इस लंगर को खोलना तो तुम्हें ही पड़ेगा। आसक्ति से मुक्त तो तुम्हें खुद ही होना होगा। मूर्च्छा से तुम्हीं को बाहर आना



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होगा।

आर्द्रकुमार अनार्य देश का रहने वाला, और हिंदुस्तान के किसी व्यक्ति ने उसे परमात्मा की प्रतिमा भेजी। इस प्रतिमा को देखकर उसे जाति-स्मरण हुआ और पूर्वजन्म भी याद आ गया। वह परमात्मा की शरण स्वीकार करने के लिए भारत चला आया और मुनि-जीवन स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह महावीर की सभा में भी पहुँचा, लेकिन योगानुयोग! जीवन में ऐसी कोई कर्मदशा विद्यमान रही कि उसे मुनित्व का चोगा फिर छोड़ना पड़ा और वापस गृहस्थ में जाना पड़ा। जिस व्यक्ति को पूर्वजन्म का स्मरण हो गया, उसे भी अपना चरित्र बदलना पड़ा। उन्होंने विवाह भी किया, बच्चा भी हुआ। वे हर रात बैठकर चिंतन करते कि उन्होंने कितना मुनासिब और कितना गलत काम किया।

एक दिन उन्होंने फिर संकल्प कर लिया कि अगले दिन वह श्रमण-प्रव्रज्या स्वीकार कर लेगा। उसने अपनी पत्नी से यह बात कही। हर मनुष्य के भीतर एक चोर छुपा रहता है। जब उसने अपनी पत्नी से पूछा और पुत्र से चर्चा की, इस पर पत्नी चर्खा कातने बैठ गई। इस पर उसके पुत्र ने इसका कारण पूछा तो वह बोली, 'क्या करूँ, तेरे पिता तो संन्यास ले रहे हैं, अब मुझे अपनी आजीविका कमाने के लिए चर्खा तो कातना ही पड़ेगा।' इस पर बेटे ने माँ को आश्वस्त किया कि उसका पिता संन्यास नहीं लेगा।

उसने चर्खे से माँ द्वारा काता गया धागा लिया और सोये हुए पिता के पैर से बाँध दिया। पिता की आँख खुली तो देखा कि धागे के बारह आँटे लगे हुए थे। उसने समझा कि अभी बारह वर्ष की आसक्ति शेष है; और यही हुआ, आर्द्रकुमार ने बारह वर्ष बाद संन्यास लिया। बारह वर्ष बाद जब उन्होंने जंगल की ओर कदम बढ़ाए तो उन्हें जंगल में देखते ही एक हाथी ने अपने पाँवों की जजीरें तोड़ डाली और आर्द्रकुमार की ओर बढ़ने लगा। जिन लोगों का वह हाथी था, वे दौड़े आए और आर्द्रकुमार से कहा, 'हटो, हाथी मार डालेगा।' मगर हाथी आर्द्रकुमार के चरणों में आकर झुका और वापस जंगल में लौट गया। आर्द्रकुमार ने यथार्थ बताया कि हाथी द्वारा लोहे की जंजीरें तोड़ना आसान है, मगर जीवन में बँधे रेशम के धागे तोड़ना मुश्किल है। रेशम के धागे तोड़ने में मैंने बारह वर्ष लगा दिए मगर धन्यभागी है वह हाथी जिसने लोहे की जंजीर को एक झटके में तोड़ डाला।

कोई भी बंधन व्यक्ति स्वयं बाँधता है। वह बँधा हुआ है। उसे किसी ने नहीं बाँध रखा। हम मुक्त होना चाहें तो पल भर में मुक्त हो सकते हैं। मुक्ति पाने के लिए कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ अपने को बँधन-मुक्त करने की ज़रूरत है। जब मैं कहता हूँ कि बंधन-मुक्त होना है तो इसका अर्थ यह नहीं कि जंगल में चले जाना



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। बस भीतर की पकड़ छोड़ने की ज़रूरत है, पंखों को खोलने की ज़रूरत है। यही मुक्ति का प्रवेश-द्वार है। पकड़ का नाम बँधन है और पकड़ के छूट जाने का नाम ही मुक्ति है।

जहाँ हो, वहीं रहो, कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है, बस पकड़ छूटनी चाहिए। भीतर ध्यान घटित हो जाना चाहिए। व्यक्ति तो मुक्त है और रहेगा। वह हमेशा से ही मुक्त था। बंधन में तो उसने खुद अपने आपको डाला है। वह मुक्त रहेगा तभी तक, जब तक वह अपने आपको विनिर्मुक्त बनाए रखेगा। सब कुछ हम पर निर्भर करता है। सवालों का जवाब तो मैं दूंगा, लेकिन यह पहले पता लगा लो कि वास्तव में हम संसार में कितने डूबे हुए हैं, और उससे मुक्त होना चाहते हैं? सही में मुक्ति पाना चाहते हैं, तब तो लंगर भी खोले जाएँगे, पतवार भी दी जाएगी। यदि ऐसा नही है तो पतवारें भी होंगी, नाव भी होगी, सामने किनारा भी दिख रहा होगा, मगर यात्रा नहीं हो पाएगी, क्योंकि लंगर खोलने का दिल नहीं करता। लंगर बड़े रसीले, सुहावने जो लगते हैं।

पार होने का पहला सूत्र है– व्यक्ति जागे। आँखें बंद रहती है या खुलीं, बातें करते हो या मौन रहते हो, यह बात अर्थ नहीं रखती। सिर्फ़ चेतना जग जाए, तो मानो सब चीज जग गई। पहला सूत्र सजगता ही है। छोड़ कर मत भागो, जहाँ हो, श्रम करो, श्रम से विमुख मत बनो। समाज में रहो तो समाज से विमुख मत बनो। कर्मयोग करो, कर्मयोग से विमुख मत बनो। प्रतिदिन कर्म हो और प्रतिदिन अपने अन्तर्मन में वापसी हो जाए। अपने मूल स्रोत से जुड़े रहे तो चाहे जो क्रिया हो जाए हमारे द्वारा हर क्रिया कर्तव्य भर होती है और कोई भी कर्तव्य कभी कर्म-बन्धन का कारण नहीं होता। यदि भीतर निर्लिप्तता है, सजगता है तो व्यक्ति कर्म तो करेगा, मगर वह निष्कर्म ही रहेगा। रोज-रोज भले आजीविका के साधन जुटाओ, मगर शाम होते ही अपने भीतर लौट कर देख लो कि कितने स्थिर हो। अपनी स्थिरता में, अन्तरस्थिति में, अन्तरदशा में विचलन नहीं होना चाहिए, जिसके कारण हम फिसल जाएँ। अन्तर्मन में इतनी सजगता हर वक़्त रहनी चाहिए।

महिलाओं को जब माहवारी होती है तो वे महीने में चार दिन के लिए संन्यस्त हो जाती हैं, अलग बैठ जाती हैं। पुरुषों को माहवारी नहीं होती, अच्छा होता अगर पुरुषों को भी होती। हमेशा नहीं कर सकते तो कम-से कम माह में चार-पाँच दिन तो ऐसे हों कि हम साधु की तरह का जीवन जीयें– निष्कलुष, निर्विकार। ऐसा कर लिया तो देखना कितना क्रांतिकारी परिवर्तन होता है। अपने आपकी मुक्ति के लिए, अपने स्वयं की पवित्रता व निर्लिप्तता के लिए, सजगता सार्थकता देगी। दिन में सुबह से शाम तक खूब काम करो। धन कमाओ, बाँटो भी, मगर शाम होते ही लौट आओ।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे नसीब में जितना था, हमें मिल गया। अब साँझ ढल गई। अब हम अपने लिये जिएंगे। अपनी शांति के लिए, अन्तरात्मा के लिए, अपनी मुक्ति के लिए जिएँगे। चौबीस घंटे ये क्या मेहनतकशी लगा रखी है, घर से घाट और घाट से घर, यही ज़िन्दगी रह गई है।

ज़िन्दगी को जीना, बिताना और पार लगाने का जो दूसरा सूत्र हो सकता है, उसका नाम है 'संतुलन'। अपने जीवन में इतना संतुलन करो कि हर चीज नपी-तुली हो जाए। न तो पूरी तरह गूंगे हो जाओ और न ही दिन भर बड़बड़ाते रहो। जो चुप है, वह दिन भर चुप रहता है और जो बोलता है, वह दिन भर कैंची की तरह जुबान चलाए जा रहा है। बोलो तो ऐसे जैसे किसी को तार भेजते हैं। उसमें हम नपे-तुले शब्द काम में लेते हैं। ऐसे ही शांत, धीर-गंभीर हो जाओ। माधुर्य भरा बोलो। ऐसा बोलो कि बोलना सार्थक हो जाए। खाओ तो भी नपा-तुला, जैसे दवा खाते हो। भोजन ऐसा सात्विक हो कि हमें स्वस्थ रखे, स्फूर्ति दे; न कि बीमार कर दे। जीवन में कुछ ऐसा लचीलापन, कुछ नया अंदाज दे जाए कि हमारा जीवन सफल हो जाए। मौन रहकर भोजन करो, प्रसन्नचित होकर एकाग्रता से, मनोयोगपूर्वक भोजन करो।

हमारा हर काम नपा-तुला हो, खाना, पीना, बोलना-बैठना, सोना सभी। न खराब देखो, न खराब बातों में रस लो। संयमित-सादगीपूर्ण जीवन जीओ। अगर ऐसा होता है, तो समझो व्यक्ति ने घर में रहकर भी 'श्रमणत्व' प्राप्त कर लिया।

तीसरी बात है 'समदर्शिता'। पार होने के लिए तीन सूत्र देता हूँ। पहला सजगता, दूसरा संतुलन व तीसरा समदर्शिता। सबके प्रति समान भाव हो, समान दृष्टि हो जाए, उदार-दृष्टि हो जाए। हमारे लिए सब बराबर हो जाएँ, न कोई अपना, न कोई पराया। सब एक बराबर। तब अगर दु:ख आया तो वही बात और सुख आया तो भी वही बात। समदर्शिता का अर्थ इतना ही नहीं कि हर व्यक्ति हर आत्मा के प्रति समदृष्टि हो जाए, वरन् परिस्थितियों के प्रति भी सम हो जाओ, चाहे अच्छी हो या बुरी, सोना या लोहा, नफ़ा या नुकसान, निंदा या स्तुति, हर परिस्थिति में अपने को मस्त बनाए रखो। जो होना था, वही हुआ। उसकी क्या चिंता? जो होना है, वही हो रहा है, उसे होने दो, अपनी ओर से इसमें बाधा मत डालो। तुम रोकना चाहोगे, तब भी रोक तो नहीं सकोगे, फिर क्यों ऐसे प्रयास करते हो। जीवन में शांति को आत्मसात् करने का सबसे अच्छा तरीका भी यही है कि जो हो रहा है, होने दो, हर काम अच्छे के लिए ही हो रहा है। हम हस्तक्षेप से मुक्त हो जाएँ, तटस्थता मुक्ति का आधार है। प्रतिक्रियाओं से विरत हो जाएँ। महाप्राणानुभूति में निमग्न हो जाएँ।


Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

*एक और प्रश्न है : मुक्ति पाने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?*

मुक्ति सबको प्रिय है। मन की शान्ति ही मुक्ति है। मुक्ति का कोई भूगोल या उसकी सीमाएँ नहीं है। शान्त, निर्मल और निरपेक्ष मन का परिणाम है मुक्ति। मन का द्वन्द्वरहित, मत और पक्षरहित होना मुक्ति को जीना है। मुक्त होना मानव मात्र का ध्येय और अधिकार है।

मन निरन्तर अराजकता फैला रहा है। आख़िर हम मन के बहकावे में कब तक बहते-भटकते रहेंगे। स्वार्थ, कषाय और विकार के तिलिस्म में हम सब कैद हैं। आख़िर ऐसा कौन है जो 'कैदी' न हो। क्रान्ति चाहिए, आध्यात्मिक क्रान्ति, एक ऐसी क्रान्ति जो मोह के अण्डे से मन के चूजे को बाहर निकाल डाले, घोंसले में सिकुड़े बैठे पंछी में साहस की चेतना जगा दे, पंख खुल पड़े और मनुष्य मुक्ति का आकाश-भर आनन्द उठा ले।

भीतर बैठा स्वामी हमें पुकार रहा है जीवन के नये क्षितिजों को उन्मुक्त करने के लिए, मुक्ति के मानसरोवर में विहार करने के लिए। हम बाहरी जगत, उसकी प्रकृति से, भीतर बैठे पुरुष को अलग देखें। विचारों, विकल्पों, वृत्तियों से स्वयं को अलग अनुभव करें। स्वयं के प्रति सचेतन होएँ; अपने-आप से प्रेम करें। जब तक सोच-विचार का भँवरजाल उमड़ता-घुमड़ता रहेगा और वृत्तियों की खलबली मची रहेगी, हम परिधि पर ही रहेंगे, केन्द्र तक नहीं पहुँच पाएँगे।

माना, अपने आपको जीतना कठिन है, पर अपने आप से हारकर जीना तो शर्मनाक है। हम धैर्यपूर्वक ध्यान धरें, स्वयं को और स्वयं की प्रकृति को समझें, स्थिर चित्त रहें, स्वयं को शान्त, मौन हो जाने दें, ताकि हमारे मौलिक व्यक्तित्व को, अस्तित्व को साकार होने का अवसर मिल सके, चेतना का सुख हमें तरबतर, आनन्द से अभिभूत कर सके।

मुक्ति-सुख पाने के लिए कुछ सुझाव हैं। पहला है : ग्रन्थियों को शिथिल करें। ग्रन्थि यानी गाँठ, मन की गाँठ, मोह की गाँठ, मत और पक्ष की गाँठ। मतों से मुक्त होना और पक्षों के प्रति निष्पक्ष रहना, मुक्ति के द्वार का उद्घाटन है। किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति होने वाली मूर्च्छा, आसक्तिपूर्ण स्मृति भी मनुष्य की ग्रन्थि ही है। ग्रन्थियाँ मनुष्य की मूर्च्छावस्था है और मनुष्य को मूर्च्छा का दौरा पड़ता रहता है। ग्रन्थि-मुक्त ही निर्ग्रन्थ है और निर्ग्रन्थ ही मुक्ति का वह सुख अर्जित करता है, जिसे पाने के लिए सम्राटों तक ने अभिनिष्क्रमण किया।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा सुझाव है : शान्त-शीतल रहें। मूड और मिजाज का कोई भरोसा नहीं है। वह कब बिगड़ जाये, रंग बदल डाले। ठंडे मिजाज का मालिक होना और सबके साथ शालीनता से पेश आना कषाय-विजय का बेहतरीन सूत्र है।

तीसरा सुझाव है : प्रसन्नचित्त रहें। सुख-दुख, सोना-माटीं, नफ़ा-नुकसान, उपेक्षा-अभिनन्दन हर परिस्थिति में प्रसन्नचित्त रहें, अलमस्त रहें। भले ही मनुष्य घर-गृहस्थी के बीच हो, पर इस अलमस्ती के चलते, हम 'फकीरी' को जी जाएँगे।

ग्रन्थि-रहित, शांत और प्रसन्नचित्त रहना समय और परिस्थितियों से ऊपर उठकर जीवन-मुक्ति को अपने-आप में जीने का उपाय है। हमें वह मुक्ति चाहिए, जिसका सुख हम जीते-जी उठा सकें। मुक्ति को हम समय, नियति या भवितव्यता से बाँधकर न बैठ जाएँ। मस्त रहें और मुक्त हो जाएँ। फिर, जो होना है, उसे हो लेने दें। हम मदारी के बंदर न बनें। उस होनहार से अपनी अंतरात्मा को ठीक वैसे ही अलग रखें, जैसे नदिया के किनारे बैठा कोई राहगीर चंचल लहरों का साक्षी बना रहता है।

जैसा कि मैंने समझा है: साक्षी का स्पर्श तथागत का फूल खिला दिया करता है। मरणधर्मा मनुष्य की जीवन-देहरी पर निर्वाण की रोशनी झरे, प्रभु! इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा!

पहले भी कई लोग मुक्त हुए हैं; भगवान् करे फिर मुक्ति के पंख खुलें।



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करें अपनी जिंदगी को चार्ज

# संबोधि-टाइम्स

मासिक पत्रिका

**श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ चिंतन के प्रसार की पवित्र भावना से प्रकाशित, संपूर्णत : लाभ-निरपेक्ष**

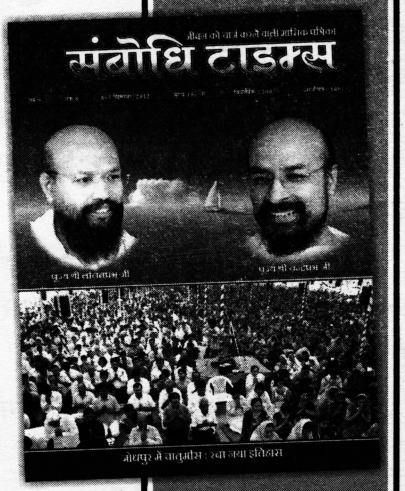


त्रिवार्षिक : 200/-
आजीवन : 600/-

सदस्यता ग्रहण करने हेतु मनीऑर्डर अथवा ड्राफ्ट निम्न पते पर भेजें –

SRI JITYASHA SHREE FOUNDATION
B-7, Anukampa II Phase, M.I. Road,
Jaipur (Raj.) Ph. 0141-2364737

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# बनना है तो बनो अरिहंत

किसी के अनुयायी बने तो क्या बने ? अगर बनना ही है तो कुछ ऐसा बनो जो तुम्हें तुम्हारी ऊँचाई दे दे। और लोग ऊँचाई तक पहुँचे, यह अच्छी बात हुई पर यह अच्छी बात उनके ख़ुद के लिए हुई। तुम्हारे लिए अच्छी बात तब होगी जब तुम ख़ुद पहुँचोगे। महावीर ने कभी नहीं कहा कि तुम महावीर-भक्त बनो, महावीर ने कहा तुम स्वयं महावीर बनो। अरिहंतों की पूजा करना श्रद्धा और आदर की बात है, पर तुम केवल ज़िंदगी भर पूजा ही मत करते रहना। अरिहंत को आदर्श बनाकर तुम अपनी जीवन-शैली को ऐसा बनाना कि तुम ख़ुद अरिहंत बन सको। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप आचार्य कब बनोगे। मैं कहता हूँ इतनी सस्ती सौदेबाज़ी कौन करेगा ? अगर बनना ही है तो आचार्य क्या बनना! अगर हम बनेंगे तो अरिहंत बनेंगे। इससे कम में समझौता नहीं करेंगे।

– श्री चन्द्रप्रभ

COPU/10551

₹30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org